



नाट्यचर्चा

1993

With Best Compliments From :

Mehta Sanghvi & Co.

**HOUSE OF
WELDING ACCESSORIES
&
SAFETY EQUIPMENTS**

WELDING TRANSFORMERS & RECTIFIERS, SPECIAL ELECTRODES, CABLES & ACCESSORIES.

GAS WELDING & CUTTING EQUIPMENT, LPG & PVC WELDING TORCHES, WELDING HOSES AND ACCESSORIES

ARGON, MIG, GAUGING TORCHES, PUG CUTTING & PROFILE CUTTING MACHINE, CERAMIC NOZZLES, TUNGSTON ELECTRODES, FILLER WIRE, FLUXES & SOLDERS & BRAZING MATERIALS.

DYE PENETRANT CHEMICALS, ANTI SPATTER SPRAY, TEMPERATURE CRAYONS, WELDING GAUGES & ELECTRODE DRYING OVENS.

HELMETS, GAS MASKS, GOGGLES, GLOVES, APRONS, PROTECTIVE SUITS, SAFETY BELTS, BOOTS, EAR MUFF, EAR PLUGS, EYE WASH FOUNTAINS ETC.

**We specialise in Spares of Gas Equipments,
Welding Transformers & Generators,
Pug M/C & Argon Equipments.**

Office :

21 C, Biplabi Rash Behari Basu Road
(Canning Street) Calcutta - 700 001
Phone : 20-8539 / 243-4342

Resi. 75-2630

Show Room :

134, Biplabi Rash Behari Basu Road,
(Canning Street), Calcutta - 700 001
Phone 242-4688 / 8195

Gram : METASAFE

आदर्शगीत 510 स्व-सांगयन जी के द्वारा -

कमलेश्वर उपाध्याय
11/6/94

नादार्चन संगीत - वार्षिकी 1993

सम्पादक :

डॉ० आदिनाथ उपाध्याय

संस्थापक :

श्री दिवाकर पाठक

परामर्श मण्डल :

उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ

डॉ० (कु०) प्रेमलता शर्मा

डॉ० (श्रीमती) एन० राजम्

डॉ० गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर

डॉ० सुभद्रा चौधरी

सह सम्पादक :

श्री प्रमोद कुमार पाठक

संयोजक :

श्री शिवेन्द्र प्रताप सिंह

प्रकाशक :

श्री शिव - काली मन्दिर संगीत समिति

डीरेका, वाराणसी - 221004

मुद्रक :

खण्डेलवाल प्रेस एण्ड पब्लिकेशन्स, वाराणसी।

पद्मपत्रप्रभः षड्ज, ऋषभः शुक्रवर्णकः। कनकाभस्तु गान्धारो, मध्यमः कुन्दसन्निभः॥

पञ्चमस्तु भवेत् कृष्णः, पीतवर्णस्तु धैवतः। निषादः सर्ववर्णोऽयं विज्ञेयः स्वरवर्णकः॥

- आवरण पृष्ठ पर संगीत के सात स्वर, (बृहद्देशी)

- पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ लेखकों के अपने विचार हैं, सम्पादक किसी विवाद के लिए उत्तरदायी नहीं है।

- कृपया प्रकाशक की अनुमति के बिना पत्रिका का कोई भी अंश अन्यत्र प्रकाशित न किया जाय।

शुभाशंसनम्

पत्रिका आतपत्रा स्यात् मुदिताः सन्तु गायकाः ।

संवादिनो वादकाः स्युः स्वस्था नृत्यन्तु नर्तकाः ॥

-गजानन शास्त्रि मुसलगाँवकरः

विषय-सूची

- | | |
|---|---|
| 1. देवी - स्तुति | पं० बलवन्त राय भट्ट 'भावरंग' |
| 2. शिव - शक्ति विमर्ष | विजय कृष्ण जोशी |
| 3. अकबर - जहाँगीर काल में भारतीय संगीत के कुछ मनोरंजक उल्लेख | डॉ० राय आनन्द कृष्ण |
| 4. जैन - वाङ्मय का संगीत - पक्ष | डॉ० कमल जैन |
| 5. सांगीतिक स्वरों की जन्मतिथि, नक्षत्र आदि | डॉ० जयचन्द्र शर्मा |
| 6. विश्वविद्यालय स्तर पर संगीत शिक्षा का मूल्यांकन | डॉ० अर्चना दीक्षित |
| 7. भारतीय शास्त्रीय संगीत में तन्त्र वाद्यों की भूमिका एवं सम्बद्ध उल्लेखनीय परिदृश्य | जय प्रकाश सिंह 'सुरमणि' |
| 8. संगीत और योग | आशीष चटर्जी |
| 9. स्वर - साधना | डॉ० भुवनेश्वर तिवारी |
| 10. The Tone Poet | Dr. Subhadra Choudhary |
| 11. Sangeet Rai Anushtup Chakravarti
Bhava Bhatt : An Extraordinary
Personality in The Field of Music | Dr. Adi Nath Upadhyaya
(Translation-J.P. Singh)
शेषमणि निगम |
| 12. गीताञ्जलि | |
| 13. हमारे लेखक - रचनाकार | |
| 14. 'नादार्चन' के पिछले अंकों की विषयवस्तु | |
| 15. शास्त्रीय संगीत से सम्बद्ध कुछ शब्दावलियाँ | |
| 16. शिव - काली मंदिर की सांस्कृतिक गतिविधियाँ | |
| 17. समारोह की कुछ झलकियाँ | |
| 18. 'नादार्चन' के संबंध में कुछ भावाभिव्यक्तियाँ | |

‘दत्तिलम्’ के प्रणेता

प्रातःस्मरणीय परम विभूति

दत्तिल मुनि

को सश्रद्ध समर्पित

आमुख

नादार्चन-प्रवेशाङ्क के सम्पादकीय-प्राक्कथन में मैंने निवेदन किया था कि यह पत्रिका संगीत के प्रयोक्ताओं-श्रोताओं, शिक्षकों-शिक्षार्थियों, शोधार्थियों, समालोचकों, आयोजकों आदि सभी के लिए उपकारक सिद्ध होगी। इसी लक्ष्य की ओर अग्रसर रहते हुए नादार्चन का यह अंक अपने शैशव के तृतीय वर्ष में प्रवेश कर रहा है।

‘नादार्चन १९९३’, प्रकाशन के इस पुनीत अवसर पर मैं परम पिता परमेश्वर का बारंबार नमन करता हूँ। इस अवसर पर मैं सर्वप्रथम सहभागी लेखकों, रचनाकारों को हार्दिक साधुवाद देता हूँ जिनके स्नेह-सौजन्य से ही ज्ञान-यज्ञ का यह गुरुतर संकल्प मूर्तत्व प्राप्त कर सका है।

पूज्य बंगाली बाबा एवं समस्त गुरुजनों को प्रणाम करता हूँ जिनका आशीर्वाद ही मेरा संबल है। पत्रिका के संस्थापक भ्रातृतुल्य श्री दिवाकर पाठक को प्रणाम करता हूँ जिनकी प्रेरणा से ही सम्पादन कार्य में प्रवृत्त हुआ। समय-समय पर विचार-विमर्श में सहभागिता के लिए नादार्चन-परामर्शमण्डल के माननीय सदस्यों एवं आदरणीया डॉ० विमला मुसलगाँवकर एवं आदरणीय प्रो० रवीन्द्रनाथ ओझा का सादर स्मरण करता हूँ।

पत्रिका के प्रकाशन एवं मुद्रण के विविध चरणों में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से जुड़े वरिष्ठ सदस्यों सर्वश्री शिवेन्द्र प्रताप सिंह, कमला सिंह, ध्रुव कुमार मालवीय; प्रिय मित्र डॉ० अनिल बिहारी ब्यौहार तथा ६ पत्नी १ श्रीमती सत्या उपाध्याय का सप्रेम स्मरण करता हूँ।

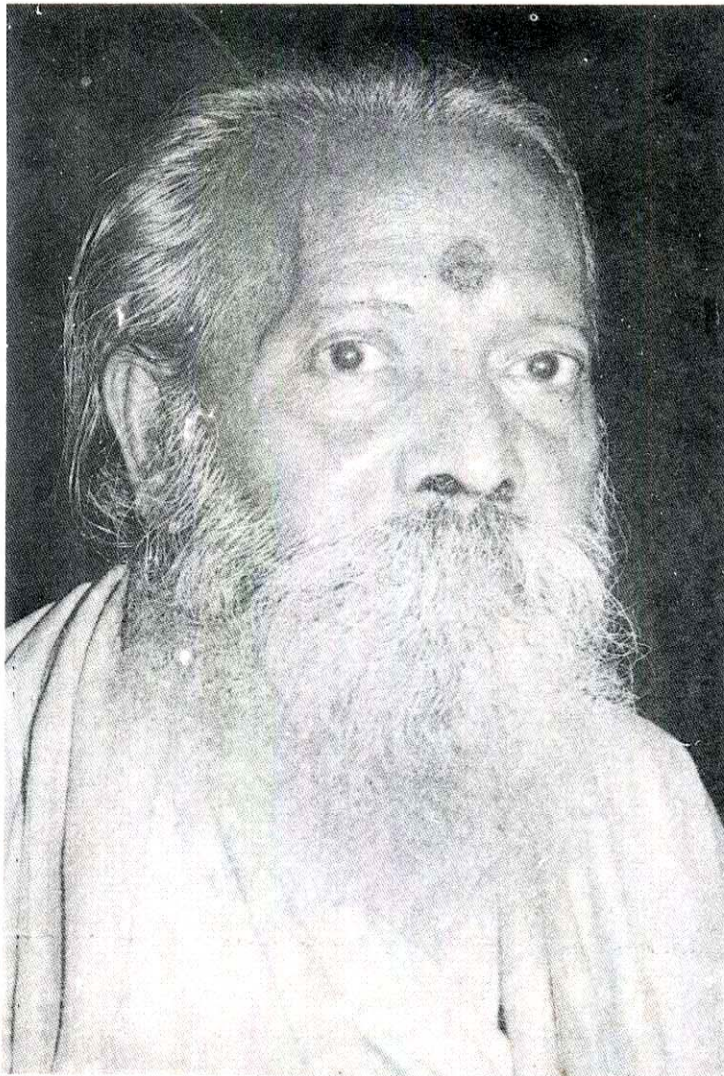
सम्पर्क सूत्र, प्रूफ रीडिंग जैसे विविध कार्यों में अर्पित सेवाओं के लिए चि० गोविन्द वर्मा, चि० विजय प्रकाश सिंह एवं चि० चेतन उपाध्याय को आशीर्वाद देता हूँ।

प्रकाशन-व्यवस्था का दायित्व वहन करने के लिए शिव-काली मन्दिर संगीत समिति एवं संस्था के संरक्षक श्री प्रताप श्रीवास्तव का आभार व्यक्त करता हूँ। ‘नादार्चन १९९३’ के सफल मुद्रण के लिए मेसर्स खण्डेलवाल प्रेस एण्ड पब्लिकेशनस् हार्दिक बधाई के पात्र हैं।

डी० रे० का० वाराणसी
दि० २३ अक्टूबर, १९९३

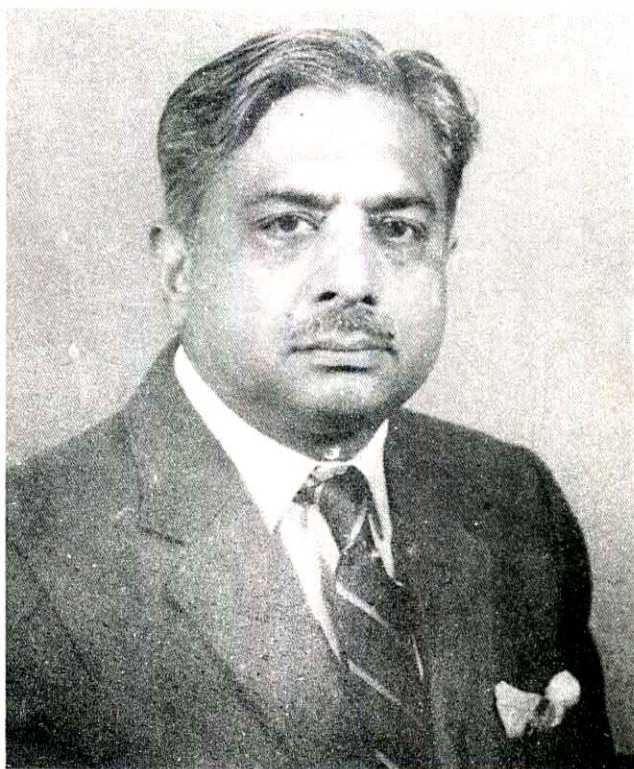
—आदिनाथ उपाध्याय

हमारे प्रेरणा-स्रोत



ब्रह्मलीन पूज्य श्री बंगाली बाबा

डीरेका परिवार के संरक्षक



हमारे महाप्रबंधक श्री प्रमोद कुमार

प्राक्कथन

(नादार्चन संगीत वर्षिकी, 1993)

बन्धूकाभां त्रिनेत्रामृतकरकलाशेखरां रक्तवस्त्रां ।
पीनोत्तुङ्गप्रवृत्तस्तनभरनमितां यौवनारम्भरूढाम् ॥
सर्वालङ्कारभूषां सरसिजनिलयां बीजसंक्रान्तमूर्तिं ।
देवीं पाशांकुशाभ्यामभयवरकरां विश्वयोनिं नमामि ॥
(बृहद्देशी)

पूर्वपीठिका — पिछले दशक में शास्त्रीय संगीत के प्रति लोगों में जो नवचेतना जगी है उसका प्रवाह देश के कोने-कोने में दृष्टिगोचर हो रहा है और ऐसे में सांस्कृतिक राजधानी काशी का तो कहना ही क्या? काशी अर्थात् नादतनु शंकर की नगरी काशी जो आदि काल से ही संस्कृति एवं संगीत का केन्द्र रही है, आज भी प्रकाश स्तम्भ की ही भाँति आलोकित है। एक ओर यहाँ के विद्यालय-महाविद्यालय-विश्वविद्यालय (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत एवं मंच कला संकाय आदि) तथा बनारस घराने के संगीत उपासक संगीत के प्रचार-प्रसार में सेवारत हैं तो दूसरी ओर यहाँ के मन्दिरों में फूलती-फलती संगीत-परम्परा भी अपने नवीन कायाकल्प के साथ उभरकर सामने आयी है। श्री संकठमोचन मन्दिर में आयोजित कार्यक्रमों से तो हम परिचित ही हैं, काशी में ऐसे अनेक मन्दिर हैं, जहाँ शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रमों का नियमित आयोजन होता है और उन्हीं में से एक है-काशी की गोद में बसा डीजल रेल इन्जन कारखाने का शिवमंदिर, आज जिसे उसके नूतन कलेवर में शिव-काली मन्दिर के रूप में जाना जाता है। डीरेका मूलतः रेल के डीजल इन्जनों का निर्माण करने वाला एक औद्योगिक नगर है। परिवेश की दृष्टि से जिसे मशीन एवं इन्जीनियरिंग का एक नीरस संस्करण ही कह सकते हैं, उत्तरोत्तर सांगीतिक चेतना का एक अग्रणी केन्द्र बनता

जा रहा है। यह डीरेका ही है जो इस शिव-काली मंदिर के प्रांगण में शारदीय नौरात्र के अवसर पर प्रतिवर्ष संगीत के राष्ट्रीय स्तर के कार्यक्रम आयोजित करता आ रहा है और अब, संगीत की उसी चेतना को गतिमान करने के उद्देश्य से इस वर्ष से संगीत की यह पत्रिका भी प्रकाशित करने जा रहा है।

संगीत गोष्ठियों में सदैव ही यह उद्धृत किया जाता है कि 'कला के बिना शास्त्र लंगड़ा तथा शास्त्र के बिना कला अन्धी है' जो एक निर्विवाद सत्य है। इस कथन से दो बातें स्पष्ट होती हैं — एक तो यह कि कला और शास्त्र एक-दूसरे से अन्योन्याश्रित रूप से सम्बद्ध हैं। दूसरे यह कि किसी कला को समझने के लिए जिस नेत्र की आवश्यकता होती है वह है, उसका शास्त्र। संगीत के साथ भी ठीक यही चरितार्थ होता है। अतः संगीत के प्रसंग में हम यह कह सकते हैं कि जितने परिमाण में हम संगीत के शास्त्र को समझेंगे उसके ज्ञान-विज्ञान को समझेंगे उतने ही परिमाण में हम संगीत को समझ पायेंगे और जितने परिमाण में हम संगीत को समझ पायेंगे उतने ही परिमाण में सम्यक् दृष्टिकोण एवं सजगता के साथ संगीत का रसास्वादन भी कर पायेंगे। शिव-काली मंदिर के तत्वावधान में 'नादार्चन' की यह प्रस्तुति, अवधारणा के इसी आलोक में, संगीत को उसके सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्य में देखने-

समझने की दिशा में एक आरम्भिक एवं लघु विनम्र प्रयास है।

विषयगत उल्लेख — नादार्चन 'प्रवेशाङ्क' की लेखमाला का शुभारम्भ शिव-काली मंदिर संगीत समिति के प्रथम संरक्षक तथा हमारे प्रेरक स्रोत ब्रह्मलीन अनन्त श्री बंगाली बाबा के जीवन-परिचय से किया गया है। अन्य सभी लेख संगीत विषय से सम्बद्ध हैं। इन निबन्धों के माध्यम से एक ओर तो शास्त्रीय संगीत के स्वरूपगत ढाँचे को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है वहीं दूसरी ओर भारतीय संगीत की मूल चेतना को भी रेखांकित किया गया है क्योंकि जब तक हमारे अन्तः में यह बात भलीभाँति बैठ नहीं जाती कि हमारे संगीत की 'आत्मा' क्या है तब तक हम संगीत के बोध से अभिज्ञ होकर भी उसके वास्तविक सौन्दर्य-बोध से अनभिज्ञ ही रह जायेंगे और 'संगीत कला' की चरम अनुभूति 'रसो वै सः' से भी वंचित रह जायेंगे। हमारे संगीत की चेतना का उत्स 'ब्रह्म' है तभी तो इसे नादब्रह्म कहा गया स्वरब्रह्म कहा गया। इसकी उत्पत्ति वेद (सामवेद) से कही गयी और उसी के अनुरूप भगवान् कृष्ण ने इसका माहात्म्य बताते हुए 'वेदनां सामवेदोऽस्मि' स्वीकार किया। यह वही संगीत है जो देवताओं को भी प्रिय है— 'गीतेन प्रीयते देवः,' योगिराज कृष्ण, ब्रह्मा तथा सरस्वती आदि सभी को इससे अनुराग है— 'गोपीपतिरनन्तोऽपि वंशध्वनिवशंगतः। सामगीतिरतो ब्रह्मा वीणासक्ता सरस्वती'। आध्यात्मिक, धार्मिक एवं दार्शनिक भित्ति पर खड़ी, यही हमारे संगीत की मूल चेतना है। मेरी समझ से भारतीय संगीत में पैठ का यह पहला और अनिवार्य चरण प्रतीत होता है। इसीलिए इस धारणा की प्रभावी अभिव्यक्ति के लिए प्रकारान्तर से हमारे लेखों में इसे विशेष स्थान दिया गया है।

यद्यपि संगीत के इस लघु प्रकाशन का आरम्भ मूल रूप से संगीत के जिज्ञासु श्रोताओं को ध्यान में रखकर किया

गया है किन्तु संगीत के प्रयोक्ताओं के लिए भी यह कम महत्वपूर्ण नहीं होगा क्योंकि भाव-सम्प्रेषण के परिप्रेक्ष्य में प्रयोक्ता एवं श्रोता का भेद स्वतः ही समाप्त हो जाता है वहाँ तो श्रोता प्रयोक्ता के लिए तथा प्रयोक्ता श्रोता के लिए हो जाता है। इसके अतिरिक्त पत्रिका में जिस समग्र दृष्टि से विषयों का चयन किया गया है, यह संगीत के विद्यार्थियों, शिक्षकों, समालोचकों तथा आयोजकों के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

अपनी कोटि के नये प्रयास और उसमें भी समय की कठिन सीमाओं के कारण 'नादार्चन' के इस अंक में अनेक त्रुटियाँ संभाव्य हैं। इसे हमारी विवशता समझते हुए पाठक क्षमा करेंगे। साथ ही यह निवेदन भी करना चाहूँगा कि इस सम्बन्ध में आप मुझे अपना अमूल्य परामर्श प्रदान करने की कृपा करेंगे ताकि नादार्चन के भावी अंकों में इन त्रुटियों का सुधार किया जा सके।

आभार-निवेदन — इतने अल्प समय में पत्रिका को यह स्वरूप देना मेरी शक्ति-सामर्थ्य के सर्वथा बाहर का काम था। इसे मैं प्रभु की असीम अनुकम्पा मानता हूँ और उस सर्वशक्तिमान को बारम्बार नमन करता हूँ। मैं ब्रह्मलीन पू० बंगाली बाबा तथा उन पू० गुरुजनों को प्रणाम करता हूँ जिनकी प्रेरणा तथा प्रसाद से ही इस ज्ञान-यज्ञ की पूर्णाहुति 'नादार्चन' के रूप में हुई। पत्रिका के संस्थापक भ्रातृ-तुल्य श्री दिवाकर पाठक को प्रणाम करता हूँ जिनकी प्रेरणा से ही मैं इस कार्य में प्रवृत्त हुआ तथा जिन्होंने मनसा-वाचा-कर्मणा मुझे सम्पादन-कार्य के लिए प्रोत्साहित किया। मैं उन सभी गुरुजनों-विद्वानों के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने इतने अल्प समय में भी अपने सारगर्भित लेख प्रदान किये। इस अवसर पर मैं अपने उन विद्वानों से क्षमा-प्रार्थी हूँ जिनसे समयाभाव के कारण प्रस्तुत अंक के लिए लेख-सामग्री न ले सका। समय-समय पर सम्पादकीय विचार विमर्श से सहभागिता तथ उत्साहवर्धन के लिए मैं श्रद्धेया डॉ० (श्रीमती) विमला मुसलगाँवकर

का आभार व्यक्त करता हूँ। बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से जुड़े मेरे एक निष्ठ सहयोगी एवं इस पत्रिका के सह सम्पादक भाई प्रमोद पाठक को अपनी शुभकामनाएँ तथा धन्यवाद देता हूँ। श्री शिवेन्द्र प्रताप सिंह तथा श्री कमला सिंह को उनके व्यवस्था सबन्धी सहयोग के लिए धन्यवाद देता हूँ। चि. अजय सिंह ने लेखकों से सम्पर्क-सूत्र के रूप में अपनी जो सेवाएँ अर्पित की उसके लिए उन्हें आशीर्वाद देता हूँ। प्रेस-कापी तैयार कराने में श्रीमती सत्यावती उपाध्याय (मेरी पत्नी) के सहयोग के लिए धन्यवाद देता हूँ।

प्रकाशन की व्यवस्था के लिए शिव-काली मन्दिर संगीत समिति को धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ। 'नादार्चन' के सफल मुद्रण के लिए 'खण्डेलवाल प्रेस' तथा जय भारत प्रिन्टिंग प्रेस' दोनों ही बधाई के पात्र हैं।

—आदिनाथ उपाध्याय

वाराणसी, दि० 17 अक्टूबर 1991

देवी स्तुति

पं० बलवन्त राय भट्ट 'भावरङ्ग'

विश्वम्भरे अम्बरे देवि

स्वरे अक्षरे सङ्गीते !

नित्ये नादयोगिवर - प्रणते,

नादब्रह्म - सुख - सुरसरिते !

महाकालि सततं स्मरामि त्वां

महालक्ष्मि सततं भजामि त्वाम् !

महावाणि सततं नामामि त्वां

मम जीवने ते प्रसादाय ।

स्वरे अक्षरे सङ्गीते ॥

विश्वम्भरे -----

अहङ्कार - हन्त्रि मम मातः

भक्ति - भावभर्त्रि मम मातः

मातदुर्गे तव पद - कमलं

कृपया स्थापय मम हृदि अचलम् ॥

विश्वम्भरे अम्बरे देवि

स्वरे अक्षरे सङ्गीते ॥

शिव शक्ति विमर्श

विजय कृष्ण जोशी

अनुक्षरं परं स्वतन्त्रं चिन्मयाद्वयम् ।

निराशंसं निजानन्दं वन्दे स्वात्ममहेश्वरम् ॥

भगवान् अनुत्तर शिव अपने स्वातन्त्र्य से शिवभाव से उतर कर जीवभाव में क्रीडाशील हैं क्योंकि स्वतन्त्र शिव की स्वातन्त्र्याख्या शक्ति अभिन्न रूपा है वही शक्ति माया तथा विद्या रूपणी है। जिसे निग्रहा नुग्रहमयी भी कहते हैं। माया शक्ति के कारण ईश का सर्वज्ञत्व -सर्वकर्तृत्व संकुचित होकर किञ्चित्ज्ञत्व तथा किञ्चित् कर्तृत्व हो जाता है। फलतः उसे “जीव” पदवी स्वीकारना पड़ता है। अतः माया शक्ति वास्तविक स्वरूप की गोपिका कही जाती है। दूसरी ओर प्रभु की शक्ति अनुग्रहमयी होने के कारण विद्या रूपणी है अर्थात् यथार्थ ज्ञान स्वरूप में प्रतिष्ठित करके महिमा-वान बना देती है। अतः इसे शक्तिपूर्ण विश्रान्तिदायिनी कहा जाता है। इस विद्या-शक्ति के सन्दर्भ में कहा गया है कि :-

यत्कटाक्षविलासेन शिवतामेति वै शवः ।

नौमितां परमामाद्यां सतः शक्तिं शिवात्मिकाम् ॥

तथा माया शक्ति के विषय में स्वरूपगोपनव्यग्रे त्यादि शव अर्थात् जीव ही शिव बनता है शिव ही शव बनता है। अतः शिवता और पशुता के मध्य (विद्या) विवेक तथा (माया) अविवेक को धारण करने वाली स्वातन्त्र्यरूपा अध्यात्मिका शक्ति का ही तो वैचित्र्य है जो निराकांक्ष, निरपेक्ष तथा शक्तिसंपन्न शिव को साकाङ्क्ष, सापेक्ष तथा

शक्तिदरिद्र रूपता का प्रतिभास कराती हुई पशु-भूमिका पर खड़ा कर देती है।

जिस माया-शक्ति के सहारे शिव पशुता ग्रहण करते हैं उसी विद्या-शक्ति के सहारे जीव अपने मौलिक शिव भाव को प्राप्त करता है। अतः उसी विद्या-शक्ति अर्थात् निजात्म शक्ति की शरण लेने पर सर्वत्र शिवता का दर्शन होने लगता है अन्यथा नहीं। इसीसे कहा गया है :

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।

मामेव ये प्रपद्यन्ते माया मेतां तरन्ति ते ॥

अपनी शक्ति अविदित होने से दुःख दारिद्र्य का कारण हैं क्योंकि यह अज्ञानशक्ति क्षुद्रभाव को जन्म देती रहती है। तथा “ मैं ही सब कुछ हूँ ” यह भाव छुड़ाकर देश, काल-वर्णादि रूप से विच्छिन्न होकर “ मैं कुछ भी नहीं हूँ ” मैं अमुक देश का वासी हूँ, अमुक समय में हूँ तथा अमुक जाति का हूँ इस सभी रूपों में व्यक्त होने लगता है। तथा ज्ञात होने पर क्षुद्र रूपता का तिरस्कार करता हुआ सर्वरूपता की अभिव्यक्ति करता रहता है। कहा भी है—

सेयं क्रियात्मिका शक्तिः

शिवस्य पशुवर्तिनी ।

बन्धयित्री स्वमार्गस्था

ज्ञाता सिद्धयुपपादिका ॥

शक्ति का सामान्यतया तीन रूप है, इच्छात्मिका, ज्ञानात्मिका तथा क्रियात्मिका। इसका स्वरूप, पररूप सूक्ष्मरूप-तथा स्थूलरूप है। ये परसूक्ष्म स्थूलरूप से स्व को भेदन करने वाली एक अहमात्मिका शक्ति ही बाह्योन्मुख दशा में इच्छारूपणी बनती है तथा ज्ञानरूपी दर्पण में अभिलिखित पदार्थ को आभासित करती है तथा ज्ञान ही अन्तःकरण तथा बहिष्करण में आक्रान्त (व्याप्त) होकर स्थूल क्रिया रूप बन जाता है। यह त्रितय रूपा भगवत्की “अहमात्मिका” अपने “अहम्” स्वरूप भगवान् “अनुत्तर, शिव” से कभी पृथक् न होने वाली शक्ति है।

जैसा कि कहा भी गया है।

यथा बिना योम विमर्त्तिरूपं

पृथग्यतो या न दधाति सङ्गाम्।

ये तीनों शक्तियाँ अपनी मूल शक्ति की खोज में सदा लगी रहती हैं। वह मूल भूता शक्ति तो आनन्द रूपा ही है अतः इस शक्ति को स्वातन्त्ररूपा कहा गया है।

स्वातन्त्र शक्ति प्रथमा तदीया,

आनन्दरूपेण विभासमाना।

यही आनन्दरूपेण शक्ति ही सृष्टि का मूल कारण है। अतएव अपनी ही इस शक्ति को स्वभावरूप से जान लेने

पर योगी शाश्वत सुख का भागी बन जाता है। अतः निराकांक्ष आनन्द स्वरूप का सदा “परामर्शन” करना चाहिए। “परामर्शन” द्वारा ही स्थूल से सूक्ष्म तथा सूक्ष्म से पररूप पर आरोह करता हुआ परानन्दमय हो जाता है। अवरोह क्रम में शक्ति विखड़ने से बैरवरी कहलाती है बैरवरी भूमि पर से ही आरोह करने पर एक के बाद एक भूमि को पार करती हुई समष्टि रूपिणी इच्छा पराभाव में अर्थात् अनुक्षर शिव में नादरूप से सतत निनादित होती हुई विद्यमान है। वही शिव की विभूति (अर्थात् सब कुछ) भी कही गयी है।

यैवास्ति सर्वकिल यस्य चैका।

उसी शक्ति को व्योम, बिन्दु, नाद, इन्दु, वाग्भवतनु तथा मातृकारुपिणी कही गयी है। इतना ही नहीं भाग्यशाली भक्तिमान् पुरुष निर्मल हृदय में निरन्तर भोग और मोक्ष रूप में विलसित होती है।

व्योमेति बिन्दुरितिनाद इतिन्दु लेखा

रूपेति वाग्भवतनूरिति मातृकेति

निःस्यन्दमान सुखबोध सुधास्वरूपा

विद्यतसे मनसि भाग्यवतां जनानाम्॥

इति

भारतीय परम्परा में स्वर को चेतन कहा गया है तथा उसी के अनुरूप हमारे शास्त्र ग्रन्थों में संगीत के सातों स्वरों - षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत तथा निषाद के कुल, देवता, ऋषि, छन्द, रस आदि तथा उनके पृथक्-पृथक् रंग भी कहे गये हैं। स्वरों के रंगों का विवरण संगीतेतर ग्रन्थों जैसे कृष्ण यजुर्वेद, नारदीय शिक्षा आदि में भी प्राप्त होता है लेकिन संगीत ग्रन्थों में यह सर्वप्रथम मतंग कृत बृहद्देशी में प्राप्त होता है।

— नादार्चन संगीत वार्षिकी १९९२

अकबर - जहाँगीर काल में भारतीय संगीत के कुछ मनोरंजक उल्लेख (भाग २)

- डॉ० राय आनंद कृष्ण

अकबर के परामर्शदाता और प्रिय दरबारी अबुल फजल ने अपने ग्रंथ आईन-ए-अकबरी में अनेक महत्वपूर्ण सूचनाएँ दी हैं, इनमें कुछ का उल्लेख पूर्ववर्ती लेख में हो चुका है। आईन-ए-अकबरी के अंतिम भाग में अबुल फजल भारत का वृत्तांत देते हैं। इसके अंतर्गत समस्त भारतीय विद्याओं पर उन्होंने प्रकाश डाला है। निश्चय ही, इस हेतु उन्होंने तत्संबंधी पंडितों और इतिहासकारों की सहायता ली होगी। भारतीय अर्थात् हिंदू परम्पराओं से संबंधित सूचनाएँ ग्रन्थों और मौखिक परंपराओं दोनों पर ही आधारित हैं। स्वयं अबुल फजल इन मान्यताओं को स्वीकार ही नहीं करते, वरन उनके प्रति आदर-सम्मान भी प्रकट करते हैं। यहाँ तक कि अनेक किंवदंतियों को, जिन्हें आधुनिक मानव स्वीकार करने में असमंजस प्रकट करेगा, अबुल फजल ने पूरे विश्वास के साथ ग्रहण और लिपिबद्ध किया है।

संगीत के संदर्भ में प्रारंभ में शास्त्रीय परंपराओं को दिया है, यथा अनाहत और आहत नाद, सप्त स्वरों के स्वरूप, रागों का त्रिधा विभाजन, रागमाला आदि। इस विवेचन के बाद वे जो लिपिबद्ध कर रहे थे वह रोचक भी है महत्त्वपूर्ण भी। वे लिखते हैं “देवताओं और ऋषियों के संगीत को मार्गी कहा जाता है और उसकी बड़ी प्रतिष्ठा है। इसके अनेकानेक आचार्य दकन में हैं”। वे इनके छै भेद भी देते हैं।

“दूसरे प्रकार का संगीत देसी है और क्षेत्र-विशेष में उसका भिन्न-भिन्न प्रयोग होता है।” यहाँ अबुल फजल का तात्पर्य धुरपद की गायकी से है जैसा आगे के विवरण से स्पष्ट होता है क्योंकि वे इस देसी संगीत का उदाहरण धुरपद की उन शैलियों से देते हैं जो आगरा, ग्वालियर और बारी

तथा उनके आस-पास के क्षेत्रों में गाया जाता है। दूसरे शब्दों में उस काल में धुरपद एक लोक-शैली के रूप में स्वीकार किया जाता था। अबुल फजल स्पष्ट रूप से कहते हैं कि ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर ने एक जन-संगीत (धुरपद) का प्रचलन किया जिसे सर्वोत्कृष्ट रुचिवालों ने भी स्वीकार किया। माना तोमर को धुरपद का यह रूप देने में नायक बख्शू मच्छू और भानू थे। “मानसिंह तोमर की मृत्यु के बाद बख्शू और मच्छू गुजरात के सुलतान महमूद की सेवा में चले गये, वहाँ से इस नयी शैली का विश्वव्यापी प्रचार हुआ।”

उपर्युक्त से यह सूचना मिलती है कि धुरपद की इस लोक-विद्या का थोड़ा विस्तृत प्रचार था अर्थात् वह ग्वालियर तक ही सीमित न थी इनमें आगरा और ग्वालियर तो प्रसिद्ध है विद्वानों को “बारी” के संबंध में संशय था। परंतु अबुल फजल ने स्वयं लिखा है (आईन-ए-अकबरी, भाग 3 अंग्रेजी अनुवाद, पृ० 316) कि सम्राट अकबर ने निम्नलिखित नामकरण किया यथा व्यास और सतलज नदियों के बीच का दोआब “बेढ जालंधर” व्यास और रावी को दोआब “बारी” चेनाव और रावी को दोआब “रेचना”, “जेनहट” व्यास और चेनाव का क्षेत्र था, व्यास और सिंध के बीच के क्षेत्र का नाम “सिंध नगर” रखा था। इसलिए आश्चर्य नहीं कि एक और ग्वालियर-रीवाँ क्षेत्र में धुरपद लोक-शैली के रूप में प्रचलित था तो दूसरी ओर पंजाब क्षेत्र में भी। बीकानेर के विद्वत् प्रेमी महाराज अनूपसिंह के आश्रय में भाव भट्ट ने भी धुरपद को एला, झोबड़, कृति, तिल्लाना के साथ रखा है। ये भाव भट्ट शाहजहाँ के आश्रित जनार्दन भट्ट के पुत्र थे। जनार्दन भट्ट के पिता तानप्पा या तान भट्ट थे। संभवतः जनार्दन भट्ट कुछ समय तक शाहजहाँ के पुत्र शाह शुजा के

भी आश्रयमें थे और उक्त मुगल शाहजादे ने उन्हें “संगीतराय” की उपाधि भी दी थी। भावभट्ट यह भी सूचित करते हैं कि धुरपद के साथ नृत्य भी होता था उसे धुरपद नृत्य ही कहते थे। उनके ग्रंथ भावमंजरी में एक नृत्याध्याय ही है। यह एक महत्वपूर्ण सूचना है क्योंकि आमतौर से माना जाता था कि धमार एक लोक-संगीत था, नृत्य में भी प्रचलित था। पर इस सूचना से ज्ञात होता है कि प्रारंभिक अवस्था में धुरपद भी ऐसा ही था। भावभट्ट यद्यपि अपेक्षाकृत बाद के लेखक हैं, परंतु परंपराओं की उनकी सूचनाएँ पुरानी परंपराओं पर आश्रित हैं। धुरपद की परिभाषा देते हुए वे कहते हैं कि वह संस्कृत या मध्यदेशीय भाषा (ब्रजभाषा) पर आधारित है, उसके दो या चार पद होते हैं और उसमें स्त्री-पुरुष की कथाएँ होती हैं (नायिका भेद या शृंगार रस प्रधान होता है।) उनमें अन्यानुप्रास होता है और गमक का प्रयोग होता है। यह परिभाषा कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें संस्कृत के धुरपदों का भी उल्लेख है। परंतु यह संस्कृत काव्य में अंत्यानुप्रास आवश्यक न था। इसलिए भाखा (ब्रजभाषा) काव्य का विशेष गुण अंत्यानुप्रास का विशेष उल्लेख है।

यमक वाला उल्लेख भी महत्वपूर्ण है। इसके उदाहरण पुराने धुरपदों में मिलते हैं। इस प्रकार के यमक काव्य की दृष्टि से ही नहीं संगीत में स्वरों के लगाव की दृष्टि से भी प्रीतिकर होते थे यथा :

पल-पल धरि-धरि छिन-छिन कौन-कौन समये।

भावभट्ट ने एक धुरपद शेरशाह की छापयुक्त भी दिया है। अन्य सूत्रों से ज्ञात होता है कि इस वंश के सलीम शाह के आश्रय में धुरपदिए थे। परंतु निम्नलिखित रचना में शेरशाह का स्पष्ट उल्लेख है :—

सेरसाह नवल कैसे रिझ्यो परतु है ना नरतंत्री२।

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है, कि राजा मान तोमर ने

धुरपद की जो विद्या प्रवर्तित की थी उसे दिल्ली का राज्याश्रय अकबर के पूर्व से ही प्राप्त था, दूसरे शब्दों में अकबर ने उसी परंपरा को एक नया ओज दिया। प्राचीन धुरपदों में वैशिष्ट्य प्रकट करने के लिए कुछ विशेष शब्दों का भी प्रयोग मिलता है जैसे बली, मणि, पति, आदि ये लौकिक बिंब थे जिनका धुरपदियों ने भरपूर प्रयोग किया है, इस प्रकार परिष्कृत रूप से आने के पहले ही इस प्रकार की लोक-चेतना थी जो परंपराबद्ध होकर धुरपदों में प्रयुक्त होती रही।

इसके उदाहरण पर उदाहरण भरे पड़े हैं। यह एक मार्के की बात है कि सरयूपारीय ब्राह्मणों में मणि, पति, बली युक्त नामों की परंपरा आज तक चली आ रही है। इससे यह संकेत मिलता है कि धुरपद के रचनाकार इन लौकिक परंपराओं से पूर्ण अवगत थे। पुराने धुरपदों में से इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिया जा सकते हैं।

अब हम पुनः अबुल फजल की कुछ सूचनाओं के प्रति अन्मुख होते हैं^३। वह लिखता है कि दकन क्षेत्र में (यहाँ कर्नाटक से आशय जान पड़ता है।) मार्गी संगीत प्रचलित है। सारे देश में इसके प्रति बहुत आदर है। यह देवताओं और ऋषियों का संगीत है, इस बात को पूर्ण विश्वास के साथ अंकित करता है। आज भी “कर्नाटक” संगीत ‘हिंदुस्तानी’ संगीत की तुलना में शुद्ध माना जाता है। परंतु जिस प्रकार मध्य देश में (ग्वालियर) में “भाखा” में लोक-संगीत अर्थात् धुरपद की रचना हो रही थी, उसी प्रकार दकन के बीजापुर क्षेत्र का सुल्तान इब्राहीम आदिल शाह द्वितीय उसी समय एक नये संगीत की रचना कर रहे थे। इसकी रचनाएँ दकनी हिंदी में हैं और कहीं-कहीं उसमें साहित्यिकता का भी पुट मिलता है^४। इब्राहिम आदिल शाह को नवरस (नौरस) शब्द बहुत प्रिय था, इसका उन्होंने भरपूर प्रयोग ककिया है। इन रचनाओं में वे राग के लिए नौरस-शब्द का प्रयोग करते हैं, यथा दर मुकाम भैरव नौरस। संभवतः उनके शीर्षस्थ कलाकार मोती खाँ थे, या पिछले लेख में उनके

संगीतकार जामाता विचित्र खॉ का विस्तृत वर्णन कर चुका हूँ।

मोती खॉ का एक उल्लेख मल्लार के संदर्भ में इस प्रकार है :-

“झनन झनन झन मोती खॉ की तौत गाजे ताल मृदंग भेद सो नवरस बाजे बैन (= ? अंतरा)

एक जा में दो कुछ लीजे, एक तंबूरा एक कामिनी कीजे आयोग

इबराहीम जक तूँ बूझै, तब विहिश्त अमृत क्या करूँ मुझै।

यह उल्लेखनीय है कि इब्राहीम आदिल शाह ने संगीतज्ञों के भिन्न-भिन्न वर्ग दिये हैं, उसमें एक अताई^६ भी है।

.... “अताई धाड़ी गुनिजन त्रिजन (स्त्रीजन ?) ...”

यह कान्हड़ा के वर्णन में है^७।

अबुल फजल ने इस संगीत को किसी प्रकार की मान्यता तक नहीं दी, इसका उल्लेख तक नहीं किया। दूसरी ओर धुरपद जैसी लोक-शैली^८ का भी उसने थोड़ा प्रारंभिक विकास दिया है। वह कहता है कि नायक बख्शू^९, मच्छू^{१०} और भानू शीर्षस्थ संगीतज्ञ थे जो ग्वालियर के राजा मानसिंह के आश्रय में थे। ये उस काल में सर्वोत्कृष्ट कलाकार थे। यह ध्यान देने योग्य है कि इस गायक मंडली में अबुल फजल ने तानसेन का उल्लेख तक नहीं किया है। इससे यह संभावना प्रकट होती है कि तानसेन उस मूल धारा से पृथक रहे होंगे और स्वयं अबुल फजल ने तानसेन को नायकों की पैंक्ति में रखना उचित न समझा। यह एक गंभीर प्रश्न है और इसपर अधिक विचार अपेक्षित है।

अबुल फजल की धुरपद के विषय में यह उक्ति हमारे उक्त वक्तव्य की पुष्टि करती है : “उन्होंने (मान सिंह तोमर)

एक लोक-शैली (पापुलर स्टाइल) के संगीत का प्रचार किया जिसे अत्यंत परिष्कृत समाज में मान्यता मिली। मैंने नीचे फुटनोट में नायक बख्शू के संदर्भ में इस शैली के कालिंजर और गुजरात के सुलतानों की राजसभा तक इसके प्रचार का संकेत दिया है। ऐसे और भी वृत्तांत हो सकते हैं। अबुल फजल का यही आशय है कि किस प्रकार यह शैली क्रमशः एक वृहत्तर क्षेत्र में व्याप्त हो गयी थी। जैरेट ने बेली के हिस्ट्री आफ गुजरात से जो संदर्भ दिया है कि बादशाह हुमायूँ इस शैली के प्रतिनिधि नायक बख्शू से प्रभावित हुआ और सम्मानित कर अपने दरबार में लाया, इससे यह स्पष्ट है कि धुरपद का मुगल दरबार में अकबर-पूर्व काल से ही प्रवेश हो चुका था। संभव है हुमायूँ के पास इस शैली के और भी गायक रहे हों क्योंकि यदि हुमायूँ इस शैली से पूर्व-परिचित न होता तो सहसा नायक बख्शू का प्रस्तुतीकरण उसे कैसे प्रभावित करता। इतना ही नहीं नायक बख्शू के प्रति मुगल सम्राटों का आदर कम-से-कम शाहजहाँ तक तो था ही, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण सहसरस का संकलन और उससे भी बढ़कर उसकी भूमिका है। अतएव इस शैली की मुगल दरबार या केन्द्रीय शासन द्वारा मान्यता अकबर ने ही दी, दूसरे शब्दों में अकबर काल से ही प्रारंभ हुई, यह इतिहास-विरुद्ध है। स्वयं अकबर को यह सुरुचि विरासत में मिली होगी और उसी के फलस्वरूप उसने तानसेन को अपने दरबार में बुलाने के लिए इतना आग्रह किया बल्कि बल-प्रयोग तक दिया।

स्वयं अबुल फजल के शब्दों में मानसिंह तोमर के पश्चात् वस्तुतः उसके पुत्र विक्रमादित्य तोमर के पश्चात् बख्शू गुजरात के सुलतान के आश्रय में चले गये जहाँ से इस नूतन शैली ने समस्त समाज में आदर पाया। अंत में अबुल फजल ने धुरपद^{१०} के संबंध में यह भी सूचना दी है कि यह चार पदों का होता है और इसमें छंदों के वक्तों की सीमा नहीं है (ऐसे प्रयोग के लिए देखिए तानसेन आदि के धुरपद) इसमें श्रृंगार रस की अवधारणा होती है जिसका हृदय पर अद्भुत प्रभाव पड़ता है। इससे यह संकेत मिलता है कि अबुल फजल

का समाज केवल संगीत पक्ष ही नहीं वरन काव्य पक्ष का भी पारखी था।

इस संबंध में जैरेट के अनुवाद की पाद टिप्पणी भी उल्लेखनीय है। विलैर्ड नामक लेखक को उद्धृत करते हुए वे कहते हैं कि ध्रुपद हिंदुस्तान का संगीत है। इसमें प्रायः पुरानी शौर्य गाथा की अवतारणा होती है। इस प्रकार के ध्रुपद एक समय प्रचलित रहे होंगे पर हमें जो प्राप्त है उनमें तत्कालीन आश्रयदाता की प्रशस्ति मिलती है, पुरानी गाथाएँ नहीं। विलैर्ड की उक्त सूचना १९ वीं शती के गायकों की परंपराओं पर आधारित थी अतएव उसपर ध्यान देना आवश्यक है। विलैर्ड के दूसरे वर्ग में श्रृंगारिक काव्य है, जिसकी बार-बार चर्चा हो चुकी है। तीसरे वर्ग में 'सामान्य विषय' (टिफलिंग्स ऐंड फ्रिवल्स टापिक्स) हैं। संभवतः इसी वर्ग को चुटकुला कहा जाता रहा होगा। चुटकुले के विषय में ख्यालियों की भी एक परंपरा मैंने अपने बाल्यकाल में सुनी थी।

(अगले अंक में जारी)

1 - देखिए श्री हरिहर निवास द्विवेदी कृत "ग्वालियर ध्रुपद नृत्य और उसका रंगमंच", ध्रुपद वार्षिकी 1989।

2 - इस लेख में भाव भट्ट संबंधी सभी उद्धरण श्री आदिनाथ उपाध्याय के गवेषणापूर्ण लेख "भावभट्ट के ग्रंथ और उनमें ध्रुपद, ध्रुपद वार्षिकी 1989" पर आधारित हैं। अतएव मैं उनका सादर आभार प्रकट करता हूँ ... लेखक।

3 - अबुल फजल ने एक राग परिवार की भी सूची दी है जो रागमाला चित्रों के समक्ष है। राग परिवारों या राग-मालाओं के अनेक भेद और उपभेद थे, उनमें से एक अबुल फजल द्वारा उल्लिखित है। यहाँ अनावश्यक मान कर उस प्रसंग की चर्चा नहीं की गयी है। कभी रागमाला चित्रों के वर्गीकरण पर अलग से लेख प्रस्तुत करने की अभिलाषा है लेखक।

4 - इस के क्षणिक ही सही काव्य वैभव पर कभी एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखने का विचार है लेखक।

5 - दे० तानसेन के संबंध में अताई शब्द का प्रयोग, मेरा पिछला लेख, नादार्चन, 1992

6 - इब्राहिम आदिल शह स्वयं अपने को प्रचण्ड जगतगुरु नादमूर्ति (नाद मूरत) कहते हैं :

इब्राहीम गाय बजाय परचंडगुत गुरु

नाद मूरत खिताब पाए।

उस क्षेत्र में प्रचंड जैसी उपाधि उदात्त के अर्थ में बहुत प्राचीन काल से पल्लव, चोलों, चलुक्यों के काल से चली आ रही थी।

7. अबुल फजल ध्रुपद को लोक-बराबर कहता है। यह शास्त्रीय दृष्टि थी क्योंकि मानसिंह तोमर पूर्व छंद प्रबंध, विष्णुपाद अथवा दक्षिण की शैली मार्गी कहलाती थी। जैसे संस्कृत के काव्य के समक्ष भाखा काव्य लौकिक माना जाता होगा, कुछ उसी प्रकार की स्थिति रही होगी। बाद में ये आंदोलन ही मार्गी हो गये जैसे ध्रुपद (बाद में धमार भी) तथा भाखा काव्य रीतिकालीन कविता के रूप में।

8. आदरणीया बहन प्रेमलताजी शर्मा ने सहसरस के संपादित संस्करण में शाहजहाँ की राजसभा में प्रस्तुत उक्त संग्रह में बख्शू की रचनाएँ प्रकाशित की हैं।

9. अबुल फजल की आई-ए-अकबरी के अनुवादक कर्नल एस० एह० जैरेट ने बख्शू के संबंध में आवश्यक पाद - टिप्पणी दी है। मानसिंह तोमर के देहावसान के पश्चात् कीर्त सिंह के आश्रय में गये तत्पश्चात् गुजरात के सुलतान बहादुर के आश्रय में थे। 1535 में उक्त सुलतान बंदी होकर हुमायूँ के सन्मुख उपस्थित किया गया। उस समय हुमायूँ ने कतले-आम का हुक्म जारी किया। तब लोगों ने कहा कि बख्शू के समान समस्त हिंदुस्तान (यहाँ हिंदुस्तान शब्द

महत्वपूर्ण है, यह हिंदी भाषी प्रदेश का पर्यायवाची था और वहीं की "भाखा" में ध्रुपद की रचना होती थी) अद्वितीय गायक है। बादशाह (हुमायूँ) ने उसे संगीत प्रस्तुत करने का आदेश दिया, प्रसन्न होकर खिलत दी और अपना दरबारी गायक नियुक्त किया। पर बख्शू पुनः भागकर सुल्तान

बहादुर के दरबार में आ गया। सुल्तान की प्रसन्नता की सीमा न रही।

10. यह ध्यान देने योग्य बात है कि अबुल फजल ने सर्वत्र इस शब्द का भाखा (ब्रजभाषा) रूप दिया है जो पुराने संगीतकारों में सर्वमान्य था, ध्रुपद या तत्सम रूप नहीं दिया है जो पुस्तकीय रूप है।

The wise men of the orient were able to perceive and appreciate beauty of nature in all things of the world. So they have been competent enough to explain their experiences into details, in their respective works on drama, dance and music, to guide and also to warn the aspirants from being swayed away with the endless desires and temptations of beauty, wealth and wine, till they attain perfection and realise the eternal Truth "Satyam, Shivam, Sundaram" which is acknowledged by them to be the only purpose of human life.

— Courtsey of S. Bandyopadhyaya.

जैन वाङ्मय का संगीत पक्ष

-डॉ० कमल जैन

संगीत एवं नृत्य राष्ट्र की आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक पूँजी के अविभाज्य अंग हैं। भारतीय समाज में आदिकाल से ही संगीत कला का समावेश पाया जाता है। प्रागैतिहासिक काल से ही जनजीवन से जुड़ी यह कला आज तक निर्बाध गति से धारा के रूप में बहती आई है। किसी संस्कृति या समाज के अध्ययन के लिए उसमें प्रचलित संगीत एवं गीतों से परिचित होना अत्यंत महत्त्वपूर्ण होता है। संगीत केवल समाज के मनोरंजन का ही विषय नहीं होता अपितु एक ऐसी भावना का निर्माण करता है जो समग्र समाज में अन्तर्निहित प्रेम एवं मैत्री की सरिता प्रवाहित करती है। संगीत एक ऐसी कला है जो अपने आप में परिपूर्ण और चित्ताकर्षक है। वह केवल विशिष्ट शिष्ट विज्ञों को ही प्रिय नहीं अपितु निरक्षर, स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध, धनवान् - निर्धन सभी को प्रिय है। दिव्य संगीत की मधुर स्वर-लहरी को श्रवण कर मानव तो क्या पशु-पक्षी भी अपने क्रूर हिंसक स्वभाव को विस्मृत करके अहिंसक बन जाते हैं। संगीत हृदय का उच्छ्वास है, मानव की भव्य भावनाओं की सहज, सरल एवं मधुर अभिव्यक्ति है। संगीत हृदय की वह भाषा है जो राग - रागिनियों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। मानव के चंचल मन के स्थिरीकरण के लिए संगीत एक अनुपम साधन है। वीतराग भगवान के चिंतन में संगीत - गायन के द्वारा हम अपने में वीतराग भाव उत्पन्न करने का प्रयास करते हैं।

जैन संस्कृति और वाङ्मय में बहुत प्राचीन काल से ही संगीत का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। जैन-परंपरा उसे

अनादि निधन मानती है। जैन पौराणिक मान्यतानुसार आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव ने सर्वप्रथम अपने पुत्र वृषभसेन को संगीत-शिक्षा दी थी। उन्होंने 100 अध्यायों वाले शास्त्र में गीत, वाद्य तथा गान्धर्व विद्या का उपदेश दिया था।

“विभुवृषभसेनाय गीत वाद्यार्थ संग्रहम्

गंधर्वशास्त्र माचरव्यौ यत्राध्यायः परः शतक॥”

- जिन सेन आदि पुराण

भारतीय संगीत की सुदीर्घ परंपरा में जैन मनीषियों ने समय-समय पर योगदान दिया है। जैन-ग्रंथ के अवलोकन से तत्कालीन गीत, वाद्य एवं नृत्य-पद्धति की पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है।

मध्यकालीन जैन-कथा “नाग पंचमी” में संगीत का महत्व बताते हुए कहा गया है कि सुन्दर युवतियों के हाव-भाव से अथवा संगीत के मधुर आलाप से जिसका हृदय मुग्ध नहीं होता वह या तो पशु है अथवा देवता। अर्थात् संगीत और रमणियों के हाव-भाव मानवमात्र को रससिक्त करने की क्षमता रखते हैं¹। नीति - शतक में साहित्य-संगीत एवं कला से विहीन मनुष्य को बिना पुँछ सींगों वाला साक्षात् पशु कहा है।

“साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षात्पशु पुच्छ विषाणहीणः” (भृर्तृहरि कृत नीति शतक)

जैन आगमों में अनेक स्थलों पर विविधा दृष्टियों से गीतों के उल्लेख मिलते हैं, कहीं कला की दृष्टि से, कहीं प्रतिपादन की दृष्टि से, कहीं विरक्ति की विवेचना के रूप में। जैन-शास्त्रों में उल्लिखित पुरुष के सीखने योग्य 72 कलाओं में गीत पंचम कला है और स्त्री की चौंसठ कलाओं में गीत ग्यारहवीं कला है। इस प्रकार स्त्री और पुरुष दोनों के लिए उसका परिज्ञान आवश्यक माना गया है।

जैनाचार्यों ने संगीत के माध्यम से संस्कृति के लिए आत्मतत्त्व एवं आत्म-शोधन की प्रक्रिया का निरूपण किया है। सागर धर्मावृत्त में जिन भक्ति के लिए संगीत को सर्वश्रेष्ठ साधन बताया गया है, तथा उसके लिए यहाँ तक कहा गया है -

“एकैवास्तु जिने भक्तिः किमन्यैः स्वेष्ट साधनैः

या दोग्धि कामनुच्छिद्य साद्योऽपाया वशेषतः

— सागर धर्मावृत्त

अर्थात् संगीत के योग से भक्ति-भाव में तीव्रता आती है, लालित्य की वृद्धि होती है और हृदय द्रवित होकर तदाकार वृत्ति में स्थिर हो जाता है। आत्मा में शान्ति-स्रोत उत्पन्न करने का संगीत एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधन है।

समवायाङ्ग सूत्र की टीका में आचार्य अभयदेव ने गान्धर्व कला व ज्ञानविज्ञान को गीत कहा है²¹। संगीतोपनिषद्सारोद्धार में कहा गया है कि तूर्य, वाद्य और नाटक की उत्पत्ति भरत चक्रवर्ती की नव निधियों में से अंतिम निधि शंख से हुई थी। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति की टीका में आचार्य विमल गिरि ने पद-स्वर तालबद्धनात्मक गान्धर्व को गीत कहा है। अर्ध मागधी में रचित अनुयोगद्वार सूत्र में पद्यबद्ध संगीत विषयक सामग्री उपलब्ध है। उसमें स्वर गीत, वाद्य, मूर्छना आदि का सूत्रबद्ध विवरण दिया गया है। किन्तु मूर्छनाओं के नामों का क्रम भरत के समान नहीं

है। आचार्य हेमचन्द्र सूरि ने अभिधान राजेन्द्र कोष में गीत, नृत्य और वाद्य एवं नाट्य का उल्लेख किया है। गीयं शब्द के अन्तर्गत संगीत तथा गीत की विस्तृत परिभाषा मिलती है। यह परिभाषा भरतकृत नाट्य शास्त्र, पार्श्वदेव कृत संगीतसमयासार तथा अन्य वैदिक साहित्य से समता रखती है³।

जैन मूर्ति-कला की उपलब्ध कृतियों में संगीत की वादन और नृत्य-शैलियों के अनुपम प्रमाण मिलते हैं। देवगढ़, खुजाराहो, दिलवाड़ा, विदिशा, मथुरा आदि के पुरातत्व अवशेष इसके साक्षात् प्रमाण हैं।

दशाश्रुतस्कन्ध में कहा गया है कि भोगकुल और उग्रकुल के राजकुमार नाट्य, गीत, वादित्र, तंत्री, ताल, नृत्तित, घन मृदंग आदि वाद्यों से युक्त थे। कल्पसूत्र की टीका में तीन प्रकार के ढोलों का उल्लेख हुआ है - पणव, मुरज और मृदंग। अनुयोग द्वार के टीकाकार मलधारि हेमचंद्र ने गोमुखी या काहल नामक वाद्य यंत्र का उल्लेख किया है, उसे दर्दरिका भी कहा जाता था। इसके अतिरिक्त आडंबर और पटह नामक ढोल का भी उल्लेख हुआ है। राज प्रश्नीयसूत्र के टीकाकार ने शंख, श्रृंग, शंखिका, खरमुखी, पेया, पिरिपिरिका, पणव, (ढोल), पटह (नगाड़ा), भंभा, होरम्भ, भेरी, झालर, दुन्दभी, मुरज, मृदंग, नन्दीमृदंग, आलिंग, कस्तुंबा, गोमुखी, मादला, वीणा, विपंची, बल्लकी, षड्भामरी वीणा, भ्रामरी वीणा, बध्वीसा, पारिवादिनी वीणा, सुधोषाघंटा, नन्दीघोष घंटा, सौतार की वीणा, काछवी वीणा, चित्र वीणा, आमोट, झंझा, नकुल, तूण, तुंब वीणा, (तम्बूरा) मुकुन्द, हुडुक्क, विचिककी करटी, डिंडिम, किणिक कडंब, दर्दर, दर्दरिका, कलशिका, मडक्क, तल, ताल, कांस्य ताल, रिंगरिसिका, लत्तिका, मकरिका, शिशुमारिका, वाली, वेणु, परिली, बद्धक आदि वाद्यों का उल्लेख किया है⁴।

स्थानांग सूत्र में कहा गया है कि संगीत के सात स्वर

नाभि से उत्पन्न होते हैं। पशु-पक्षियों से स्वर ज्ञान, मात्राओं एवं ध्वनियों से सम्बद्धता बतायी गयी है। मयूर से षड्ज, कुक्कुट से ऋषभ हंस से गान्धार, भेंड़ से मध्यम, कोयल से पंचम, क्रींच और सारस से धैवत तथा हाथी से निषाद स्वर की उत्पत्ति हुई है। इसी प्रकार विभिन्न वाद्य यंत्र विभिन्न स्वरों की उत्पत्ति करते हैं। मृदंग से षड्ज, गोमुखी से ऋषभ, शंख से गान्धार, झल्लरी से मध्यम, गोधिका से पंचम, ढोल से धैवत, महाभेरी से निषाद स्वर उत्पन्न होते हैं⁵। इन सात स्वरों के तीन ग्राम कहे ये हैं— षड्ज ग्राम, मध्यम ग्राम, गान्धार ग्राम। षड्ज ग्राम की आरोह-अवरोह रूप सात मूर्छनाएँ कही गयी हैं—मंगी, पौरवीया, हरित, रजनी, सारकान्ता, सारसी, शुद्धषड्जा।

मध्यम ग्राम की सात मूर्छनाएँ कहीं गयी हैं—उत्तर भद्रा, रजनी, उत्तरा, उत्तरायता, अश्वक्रान्ता, सौवीरा, अभिरूद्गता। गान्धार ग्राम की सात मूर्छनाएँ नन्दी, क्षुद्रिका, पूरका, शुद्ध गान्धारा, उत्तर गान्धारा, सुष्टुतर आयामा, उत्तरायता कोटियाँ हैं। गीत के छह दोष आठ गुण, तीन वृत्त, दो भणितियाँ होती हैं एवं जो इन्हें जानता है वही सुशिक्षित व्यक्ति रंगमंच पर गा सकता है।

गीत के छह दोष

- भीत - डरते हुए गाना
- द्रुत - शीघ्रता से गाना
- ह्रस्व - शब्दों को लघु बना कर गाना
- उताल - ताल के अनुसार न गाना
- काक स्वर - कर्ण कटु स्वर में गाना
- अनुनास - नाक के स्वरों में गाना

गीत के गुणों को दो विभागों में विभक्त किया गया है।

प्रथम भाग के आठ गुण

- पूर्ण - पूर्ण कला से गाना
- रक्त - राग को रंजक बनाकर गाना
- अलंकृत - अलंकारों से विभूषित करके गाना
- व्यक्त - स्पष्ट स्वर में गाना
- अविधुष्ट - नियमित स्वर से गाना
- मधुर - माधुर्य रस से परिपूर्ण गाना
- सम - तालयुक्त गाना
- सुकुमार - ललित कोमल लय से गाना

द्वितीय भाग के (गेय पदों के) आठ गुण

- निर्दोष - 32 दोषों से रहित होना
- सारवन्त - सारभूत अर्थ से युक्त होना
- हेतुयुक्त - अर्थ साधक हेतु से युक्त होना
- अलंकृत - काव्यगत अलंकारों से युक्त होना
- उपनीत - उपसंहार से युक्त होना
- सोपचार - कोमल अतिरूद्ध और अलज्जनीय अर्थ का प्रतिपादन करना
- भित - अल्प पद और अल्प अक्षर वाला होना
- मधुर - शब्द, अर्थ और प्रतिपादन की अपेक्षा मृदु होना

छंद तीन प्रकार के होते हैं :-

- सम - जिसके चरण और अक्षर सम हों अर्थात् चार चरण हो उनमें गुरु लघु अक्षर भी

समान हो।

अर्ध सम - जिसके चरण या अक्षरों में कोई एक सम हो, विषम चरण होने पर भी उनमें गुरु लघु अक्षर समान हो।

सर्व विषम - जिसमें चरण और अक्षर सब विषम हो।

गीत की भाषा दो प्रकार की बतायी गयी है, संस्कृत और प्राकृत। ये दोनों प्रशस्त ऋषि भाषित और स्वर-मण्डल में गायी जाती थी।⁶

संगीत समयसार में आचार्य कहते हैं जहाँ प्रबंध काव्यों का गायन किया जाता है, उनके अक्षरों के अनुसार ही वाद्य बजाये जाते हैं। इन्हीं के अनुसार ही वाद्य बजाये जाते हैं। इन्हीं के अनुसार ही नृत्य किया जाता है। वही पद्धति शुद्ध कही जाती है।⁷

हरिभद्र के कथा - साहित्य से ज्ञात होता है कि गान्धर्व संगीत कला में निपुण होते थे। वे संगीत कला की शिक्षा देकर आजीविका अर्जित करते थे। संगीत शाला में सारा दिन अभ्यास चलता रहता था। गान्धर्व स्त्रियाँ संगीत के आयोजन करती थीं।

प्राचीन काल में काव्य अधिकतर श्रवण किये जाते थे, उनका प्रचार - प्रसार गायन द्वारा होता था। तीर्थ-यात्रा के समय गीतवाद्य-भक्तिपरक भाजनों का आयोजन किया जाता था। मंदिरों में मूर्ति-स्थापना और पूजा आदि उत्सव पर भक्तिपरक संगीत आयोजन होता था।⁸

राग भारतीय संगीत की नींव है। भारतीय संगीत में राग-रागिनियों को ऋतु और कालों में विभाजित किया गया है। भिन्न - भिन्न रागों की भिन्न प्रकृति होती है। संगीत-शास्त्र के अनुसार राग धनाश्री मांगलिक अवसरों पर गाया जाता है। राग मल्हार वर्षा कालीन राग है। राग विलावल प्रातः काल में गाया जाता है।

जैन-शास्त्रों में गायन हेतु रागों के समय - निर्धारण का भी उल्लेख मिलता है। आचार्य हेमचन्द्र ने वीतराग स्त्रोत में मालवकैशिकी नाम के राग का उल्लेख किया है। पौराणिक मान्यता के अनुसार महावीर ने दूसरा प्रवचन मालकौंस राग में किया था। उस समय वहाँ पर उपस्थित सभी जीवधारियों ने अपने जातिगत वैर को भुला दिया था और वहां समता और निर्मल प्रेम की धारा प्रवाहित हो चली थी। उत्तराध्ययन सूत्र से ज्ञात होता है कि कपिल मुनि ने ध्रुव पद में गाकर पाँच तस्करों से स्तेय कृत्य छुड़वाकर उन्हें श्रमण दीक्षा प्रदान की थी। इसी सूत्र में अन्य स्थान पर कहा गया है कि चित्र और संभूत नामक मातंग पुत्र तिसरय और वेणु बजाते हुए नगर से निकलते थे तो लोग उनके गायन - वादन पर मुग्ध हो जाते थे¹⁰। आवश्यक चूर्णि में कहा गया है कि सिन्धु सौवीर का राजा उदयन अपनी संगीत कला के माध्यम से मदोन्मत्त हाथियों को भी वश में कर लेता था। वह वीणा बजाता था, उसकी रानी सरसों के ढेर पर नृत्य करती थी।

उपर्युक्त उल्लेखों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्राचीन काल में जैन आचार्यों को संगीत का पर्याप्त ज्ञान था और उन्होंने अपने ग्रन्थों में संगीत के तीनों अंगों गायन, वादन, तथा नृत्य का उल्लेखनीय समावेश किया था, संगीत को माध्यम बनाकर इन्होंने अपनी भावना, आराधना और विनय को व्यक्त किया था। वे अपने पदों को स्वर और ताल में बाँध कर भगवद् - स्तुति करते थे।

जैन - ग्रन्थ अनेक दुर्लभ सांगीतिक सन्दर्भों से भरे पड़े हैं जो संगीत शास्त्र के गंभीर अध्येता के लिए विशेष महत्त्व के हैं। यहाँ इस लघु लेख में उदाहरण स्वरूप ही कुछ तथ्यों का उद्घाटन करना शक्य हो सका है। वस्तुतः इस दिशा में किया गया यह एक आरंभ मात्र है। आवश्यकता है एक पृथक् सुनियोजित सर्वेक्षण की।

सन्दर्भ सूची :-

1. नाग पंचमी 10/294
2. समवायांग सूत्र 72
3. हेमचन्द्र अभियान राजेन्द्र कोष 2/183/84
4. राज प्रश्नीय सूत्र 77
5. स्थानांग सूत्र 7/41/42
6. स्थानांग सूत्र 7/44/48
7. संगीत समयासार 7/230
8. हरिभद्र सूरि पंचाशक 9/3/75/11
9. उभय कुमार मौधेय का लेख, उद्धृत जैन पत्रिका विजया नंद ?
10. उत्तराध्ययन सूत्र अध्याय 4 की टीका
उत्तराध्यय सूत्र/अध्याया 13 की टीका

“अपनेको और भगवान्को यथार्थ रूपसे जाननेके बाद ही यथार्थ प्रेम होता है, परन्तु यथार्थरूपसे जानना भी प्रेमके बिना सम्भव नहीं। इस ज्ञान और प्रेममें परस्पर साध्य - साधन सम्बन्ध है। पहले कुछ ज्ञान होनेपर प्रेम होता है, प्रेम होने पर यथार्थ ज्ञानके अनन्तरका जो परम प्रेम है, वही सर्वोच्च प्रेम है। उसी प्रेमको भक्तोंने ‘रसाद्वैत’ कहा है। यहाँ प्रेमी और प्रेमास्पदकी एकता हो जाती है। परस्पर दोनों एक दूसरेमें घुल - मिल जाते हैं।”

— श्रद्धेय भाईजी श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार

सांगीतिक स्वरों की जन्मतिथि, नक्षत्र आदि

- डॉ० जयचन्द्र शर्मा

ब्रह्माण्ड में निनादित होने वाली नाद-तरंगों से स्वर और शब्दों की उत्पत्ति हुई। नाद का अस्तित्व जड़ व चेतन में पाया जाता है। सुमधुर नाद प्राणी-मात्र को मोह लेता है! संगीतज्ञों ने इसी नाद को स्वर की संज्ञा दी है, जिनकी संख्या सात है और जिनमें समस्त विश्व का संगीत समाया हुआ है।

भारतीय मनीषियों ने योग साधना द्वारा सप्त-स्वरों के अदृश्य प्रभाव को खोज कर अध्यात्म के विशाल क्षेत्र को उपलब्ध कर पृथक् से 'गंधर्व वेद' की रचना की। उन्होंने अनुभव किया कि संगीतकला का संबंध विज्ञान, आयुर्वेद, ज्योतिष, चित्रकला आदि विद्याओं तथा कलाओं से है। ब्रह्माण्ड से तरंगित इन सुमधुर ध्वनियों की अभूतपूर्व शक्तियों के प्रभावानुसार उनके ध्यान को निश्चित कर साधना करने वाले साधक भारत की इस पवित्र भूमि पर अनेक हुए हैं। उन्होंने स्वर-शक्ति का चिंतन-मनन और अध्ययन कर उनकी (स्वरों की) जन्मतिथि, नक्षत्र, वार, जाति, आयु, जन्मभूमि, आदि का उल्लेख ग्रंथों में किया है।

तत्ववेत्ताओं का कथन है कि इस ब्रह्माण्ड में अदृश्य रूप में संगीत की सूक्ष्म लहरें प्रतिक्षण तरंगित होती रहती हैं। योगीजन उक्त मधुर नाद को सुन कर आनन्द प्राप्त करते हैं। वह संगीत मन को ज्योतिर्मय कर देता है। अतः ऐसे संगीत की साधना कर प्रत्येक व्यक्ति को अपनी

आत्मिक सम्पदा का विकास करना चाहिए।

भारतीय संगीत शास्त्र एक गूढ़ विज्ञान है। आज के संगीतज्ञ संगीत विषय पर शोध कर रहे हैं किन्तु प्राचीन ग्रंथों में उल्लिखित संगीत-सामग्री का अधिकांश भाग अभी भी आवरण-आवृत रह गया है। उन ग्रन्थों में दी गयी रहस्यमय बातों की गुत्थी सुलझाना आज के शोधकर्ताओं के सम्मुख एक कठिन समस्या बनी हुई है।

शास्त्रकारों ने सूर्य की सप्त रश्मियों, सप्त-द्वीपों, सात वारों आदि से सप्त स्वरों का सम्बन्ध स्थापित कर उनकी जन्मतिथि, जन्म नक्षत्र, एवं जन्मभूमि का उल्लेख किया है। जो ज्योतिष-शास्त्र और संगीत के आपसी सम्बन्ध की पुष्टि करता है स्वरों की

स्वरों की जन्मतिथि -

अमल अमावस्या अने अनुर्पे त्रयोदशी एवं।

पंचमी अष्टमी अप्तमी तृतीया नवमी तैम ॥ (116)

षड्ज आदि स्वर सप्तमी जन्मतिथि जयरूप।

सुझ जनां समझो लिए अनुक्रम अनुरूप ॥ (117)

(संगीत शास्त्र पृ० 25)

षड्ज स्वर की जन्मतिथि सप्तमी का उल्लेख किया है। बाद के स्वरों की जन्मतिथियों का क्रम निम्न प्रकार बनता है -

स्वर-नाम	सा	रे	ग	म	प	ध	नि
तिथि	सप्तमी	तृतीया	नवमी	अमावस्या	त्रयोदशी	पंचमी	अष्टमी

विचारणीय यह है कि संगीत के स्वर प्राणी तो हैं नहीं, फिर इनकी जन्मतिथि, नक्षत्र, वार आदि के पीछे क्या रहस्य है? ग्रंथ में आगे जन्म नक्षत्रों का निम्न प्रकार से उल्लेख किया है -

जन्म नक्षत्र—

आर्दा आदि स्वर तणु नवम जन्म नक्षत्र
पूर्वाषाढा द्वितीयं तु प्रमाणं नित्य मघा पवित्र ॥118॥
स्वाति विशाखा मूल पद्मी रेवती मघा महान ।
यथा क्रमे स्वर अन्यनां नक्षत्रों मन मान ॥ 119 ॥
(संगीत शास्त्र पृ० 25)

सप्त स्वरों के जन्म नक्षत्रों का क्रम ग्रंथाकार के अनुसार निम्न प्रकार है -

स्वरों की जन्मभूमि—

जम्बूशाककुश क्रौंचशाल्यमलीश्वेत नाम सु ।

द्वीपेणु पुस्तुरे द्वीपे जाताः सप्तस्वराः क्रमात् ॥ एण ॥
(सं०पा०)

भारतीय संगीत शास्त्रज्ञों के मतानुसार क्रमशः स्वरों की जन्मभूमि जम्बू, शाक, कुश, क्रौंच, शाल्यमली, श्वेत और पुष्कर द्वीप है। इसी प्रकार स्वरों के वार, आयु, रंग, देवता, ऋषि आदि पचासों बातों की जानकारी प्राचीन ग्रंथों में मिलती है।

स्वर को हम ईश्वर मानते हैं और ईश्वर निराकार है उसी प्रकार स्वर भी निराकार है किन्तु साधना हम साकार मान कर करते हैं। अतः भारतीय संगीत साधकों ने स्वर को निराकार और साकार स्वरूप दोनों ही दृष्टियों से स्वीकारा है ऐसा प्राचीन ग्रंथों के अध्ययन से विदित होता है।

स्वर-नाम	सा	रे	ग	म	प	ध	नि
नक्षत्र	आर्दा	पूर्वाषाढा	स्वाति	विशाखा	मूल	रेवती	मघा

वर्तमान ज्योतिषाचार्यों की गणनानुसार स्वरों के नक्षत्रों का क्रम निम्न प्रकार बनता है। जिनके नाम हैं—शतभिषा, स्वाति, घनिष्ठा, मघा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और अनुराधा। वर्तमान ज्योतिषाचार्य पहले वाले क्रम अर्थात् संगीत शास्त्र में उल्लेखित क्रम को गलत मानेंगे जो उचित भी है क्योंकि 'संगीत शास्त्र' ग्रंथ में दिये गये नक्षत्र, तिथि का क्रम ज्योतिष शास्त्रानुसार सही नहीं बैठता है यह विचारणीय तथ्य है।

ब्रह्माण्ड में निनादित इन मधुर ध्वनियों का विद्वानों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से उनके गुण, स्वभाव, प्रभाव आदि का गहराई से अध्ययन कर सम्बन्ध स्थापित किया है। आगे एक तालिका दी जा रही है, जिसमें स्वरों से सम्बन्धित कुछ विषयों को दर्शाया गया है।

(15)
तालिका

विवरण क्रम	षड्ज	ऋषभ	गंधार	मध्यम	पंचम	धैवत	निषाद
रश्मि	सुषुम्ना	सुरदना	उदयवशु	विश्वकर्मा	उदावशु	विश्वव्यचा	हरिकेश
देवता	अग्नि	ब्रह्मा	सरस्वती	शिव	विष्णु	गणेश	सूर्य
देवी	ब्राह्मणी	महेश्वरी	कौमारी	वैष्णवी	वाराही	महेन्द्री	चामुंडा
ऋषि	अग्नि	ब्रह्मा	चन्द्रमा	विष्णु	नारद	तूम्बरू	कुबेर
वंश	देव	मुनि	देव	देव	पितृ	मुनि	दैत्य
आयु	80 वर्ष	70 वर्ष	60 वर्ष	40 वर्ष	30 वर्ष	20 वर्ष	10 वर्ष
रंग ●	गुलाबी	हरा	स्वर्ण	सफेद	काला	पीला	कुरबरा
वस्त्र	श्वेत	लाल	लाल	श्वेत	पीत	लाल	श्याम
शस्त्र	फरसा	खड्ग	धनुष	मुगदर	कुल्हाडी	मूसल	त्रिशूल
वाहन	बैल	घोड़ा	रथ	हाथी	पालकी	सिंह	भैंसा
रत्न	मणिक्य	मोती	मूंगा	पन्ना	पुखराज	हीरा	नीलम
वनस्पति	आम्र	खर्जूर	कदली	निम्बू	दाड़िम	द्राक्ष	पुन्नाग

● विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य 'नादार्चन' वार्षिकी 1992, रंगों की पृष्ठभूमि तथा सांगीतिक सात स्वरों के रंग डॉ० आदिनाथ उपाध्याय

उपर्युक्त सूची बहुत लम्बी है इनमें कई विषयों के रंग-विरंगे चार्ट व चित्र 'श्री संगीत भारती, शोध विभाग, बीकानेर' में उपलब्ध है।

भौतिकवाद के वर्तमान युग में ये सब बातें निरर्थक प्रतीत होती हैं। किन्तु शोधकर्ताओं ने नाद-विद्या के इस रहस्य की खोज करने पर पाया कि ये स्वरों के गुण, स्वभाव, प्रभावादि की जानकारी कराने वाले प्रतीक हैं। जैसे स्वरों के शस्त्र का अर्थ है अमुक स्वर की ध्वनि मानव हृदय पर उक्तशस्त्र की चोट की तरह प्रभाव डालती है। इसी प्रकार स्वरों के वाहन की चाल के अनुरूप उनकी गति हैं।

स्वर-शक्ति और शब्द-शक्ति दो पृथक्-पृथक् शक्तियाँ हैं। दोनों की उत्पत्ति नाद से होती है किन्तु दोनों के प्रभाव भिन्न-भिन्न पाये जाते हैं। शब्द-शक्ति का प्रभाव भयंकर भी हो सकता है पर स्वर-शक्ति सर्वदा आनन्ददायी तथा कल्याणकारी प्रभाव ही प्रकट करती है। स्वर ईश्वर का स्वरूप है, जहाँ आनन्द ही आनन्द है।

ज्योतिषाचार्य ग्रहों के प्रभाव आदि का परिणाम किसी नाम के प्रथम अक्षर के आधार पर निकालते हैं, जिनका सम्बन्ध वर्णमाला के स्वर और व्यञ्जनों से हैं। भारतीय मनीषियों की मान्यतानुसार इन वर्णों की उत्पत्ति षट् चक्रों से सम्बद्ध है, जबकि संगीत के स्वरों की उत्पत्ति स्थान इनसे

बिलकुल भिन्न है। जैसे नाभि से षड्ज, हृदय से ऋषभ, वक्षस्थल से गंधार, कंठ से मध्यम, होठ से पंचम, तालु से धैवत और नासिका से निषाद की उत्पत्ति मानी है। शास्त्रकारों ने सप्त स्वरों का जन्म स्थान सप्त द्वीपों को माना है, जैसा कि पीछे उल्लेख किया है। कायापिण्ड में जो स्वर हैं वे ही सप्त द्वीप हैं।

संगीत के स्वरों का वर्णमाला के व्यंजनों से पृथक् अस्तित्व है। नक्षत्रों से इनका सम्बन्ध संगीतमय ध्वनियों के आधार पर होने के कारण प्रचलित ज्योतिष-शास्त्र की गणना से इनका प्रभाव भिन्न पाया जाता है जो प्रामाणिक एवं वैज्ञानिक है। संगीत के स्वरों की जन्मतिथि, नक्षत्रादि जिस रूप में प्राचीन शास्त्रकारों ने बताये हैं उनके अनुरूप ही उसका प्रभाव समस्त ब्रह्माण्ड में होता है। स्वरों की रचना प्रकृति की देन है और राग का निर्माण मानव ने किया है। अतः इस विषय की सम्यक् जानकारी प्राप्त करने के लिए आवश्यकता है—स्वर-सागर में गहराई से गोता लगा कर खोज करने की।

संदर्भ ग्रंथ :—

1. बृहद्देशी—मतंग
2. संगीत परिजात—अहोबल
3. मूलधार—मीनाप्पा व्याकाप्पा केलवाडे
4. संगीत शास्त्र—राज ज्योतिषी नाथू लाल
5. शा० ब्रा० बंधु (मासिक)—सम्पादक रेवती रमण शर्मा, सितंबर 91
6. संगीत (मासिक) सम्पादक प्रभुलाल गर्ग जनवरी-फरवरी 37
7. संगीत कला विहार (मासिक)
8. ज्योतिष शास्त्र—लेखक नारायण दत्त श्रीमाली
9. राजस्थान पत्रिका सं० मिलाप कोठारी, 3 जनवरी 93

शास्त्रीय संगीत से सामान्य जन इसलिए ऊब जाते हैं कि उसमें भावात्मक सिद्धि तथा रसात्मक अनुभूति का कोई अंश कर्णगोचर नहीं होता। इसीलिए ऐसा संगीत हृदयंगम नहीं हो पाता। कुछ लोग ऐसे अवश्य हैं जो तैयारी मात्र को सुनने के लिए लालायित रहते हैं किन्तु उनकी संख्या अल्प है। गीत में स्वरों और शब्दों द्वारा रस प्राप्ति के अभिलाषी जन शास्त्रीय संगीत के वर्तमान रूप से उदासीन रहते हैं। इसीलिए सामान्य जन सिनेमा संगीत की ओर स्वाभाविक ही दौड़ते हैं। इसीलिए उन्हीं सब कारणों से बाध्य होकर संगीत के वर्तमान स्वरूप में परिवर्तन होना अवश्यंभावी है। वह समय दूर नहीं जब भरत कथित रस-निष्पत्ति के समुचित पथ का अवलंबन किया जायेगा।

— पं० ओंकार नाथ ठाकुर

विश्वविद्यालय स्तर पर संगीत-शिक्षा का मूल्यांकन

-डॉ० अर्चना दीक्षित

ललित कलाओं में संगीत कला का बहुत ही विशिष्ट स्थान है। जहाँ अन्य ललित कलाओं के साथ चित्र कला, मूर्ति, स्थापत्य आदि के साधन स्थूल हैं वहीं संगीत कला के उपादान स्वर तथा लय अत्यंत सूक्ष्म हैं। अन्य ललित कलाएँ किसी न किसी रूप में प्रकृति से प्रेरणा लेती हैं। किसी सीमा तक उसका अनुकरण भी करती हैं। लेकिन संगीत कला निसर्ग का कोई अनुकरण नहीं करती। संगीत कला अपने स्वर और लय रूपी सूक्ष्म साधन द्वारा मानवमन के अत्यंत सूक्ष्म मनोभावों का प्रदर्शन करती है।

संगीत-शिक्षा की परंपरा अपने देश में प्राचीन काल से चली आ रही है। प्रत्येक विद्या के शिक्षाग्रंथों के नाम मिलते हैं जिसमें नारद द्वारा रचित 'नारदीय शिक्षा' एक प्रमुख ग्रंथ है।

प्राचीनकाल से ही संगीतशिक्षा गुरुमुखी विद्या रही है। गुरु से शिष्य और शिष्य द्वारा उसके शिष्यों को यह मौखिक रूप में मिलती रही। यह गुरुकुल-पद्धति की संगीत-शिक्षा आज तक अक्षुण्ण रूप में चली आ रही है। आज भी कुछ घरानों में इसी पद्धति से शिक्षा दी जाती है, यद्यपि इस पद्धति की शिक्षा का प्रचार अवश्य कम हो गया है। इस पद्धति में शिष्य गुरु के पास जाता है तथा यदि गुरु उसको शिक्षा का पात्र समझता है तो उसे अपने पास रख लेता है। कठोर तपस्या की भाँति कई वर्षों तक विद्यार्जन करना पड़ता है तथा गुरु के आदेशों का पूर्ण पालन करना पड़ता है। इस पद्धति में अनुशासन, कड़ी मेहनत एवं साधन के बल पर अच्छे गुणी कलाकार निकल सकते हैं वस्तुतः इस

पद्धति में गुण के साथ-साथ कुछ दोष भी हैं। आज से प्रायः सौ वर्ष पूर्व पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर तथा पं० विष्णु नारायण भातखण्डे जी ने संगीत-शिक्षा को नया स्वरूप तथा नया आयाम दिया। उन्होंने संस्थागत संगीत-शिक्षा की नींव रखी संस्थाओं में सामूहिक रूप में बड़ी संख्या में संगीत जानने-समझने वाले विद्यार्थी तैयार करने की योजना बनाई तथा उसे कार्यान्वित भी किया। आज संस्थागत संगीत शिक्षण बहुत प्रचार में है। देश में अनेक संस्थाएँ संगीत शिक्षण-कार्य में अपना योगदान दे रही हैं।

स्कूल में भी अन्य विषयों के साथ सप्ताह में एक-दो दिन कलाशिक्षण के महत्व को शिक्षाविदों ने आवश्यक समझा तथा उनके अनुसार आठवीं कक्षा तक सप्ताह में एक दिन या दो पीरियड चित्रकला या संगीत कुछ विद्यालयों में सिखाया जाने लगा। दसवीं तथा इण्टर कक्षाओं में संगीत एक ऐच्छिक विषय के रूप में छात्र-छात्राओं का बहुत प्रिय विषय रहा है।

संगीत शिक्षण संस्थाओं का इतिहास देखें तो सर्वप्रथम 1874 ई० में पं० भास्कर राव बखले ने पूना में 'भारत गायन समाज' की स्थापना की। सन् 1880 के आसपास पं० आदित्य राम ने जामनगर में समूहिक शिक्षण का प्रयास किया। 1886 में बडौदा में महाराजा सयाजीराव द्वारा 'बडौदा स्टेट म्यूजिक स्कूल' बनाया गया, जिसके प्रधानाचार्य थे उस्ताद मौला बख्श। 1890 में पारसी समुदाय ने बम्बई में 'गांधर्वो-तेजना मंडल' बनाया। 1901 में पलुस्करजी द्वारा गांधर्व मंडल की स्थापना की

गयी। 1926 में भातखण्डेजी ने लखनऊ में 'मेरिस कालेज आफ म्यूजिक' की स्थापना की। किन्तु विश्वविद्यालय के अंदर संगीत कालेज की स्थापना का सर्वप्रथम श्रेय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को जाता है। 1950 में का० हि० वि० में 'श्री कला संगीत भारती' के नाम से म्यूजिक कालेज की स्थापना पं० ओमकारनाथ ठाकुर द्वारा की गयी। वर्तमान समय में युनिवर्सिटी के अंतर्गत स्वतंत्र संगीत-संकाय निम्नलिखित विश्वविद्यालयों में है।

1. इंदिराकला संगीत विश्वविद्यालय-खैरागढ़,
2. विश्वभारती-शांतिनिकेतन, 3. रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय-कलकत्ता, 4. संगीत एवं ललित कला संकाय-दिल्ली विश्वविद्यालय, 5. कालेज आफ म्यूजिक, डान्स एवं ड्रामेटिक्स-बड़ौदा (महाराजा सयाजी राव युनिवर्सिटी)

इन स्वतंत्र संकायों के अतिरिक्त लगभग 40 विश्व विद्यालयों में संगीत के विभाग हैं जिसमें कुछ में स्नातकोत्तर उपाधि तक पढ़ाई होती है तथा कुछ में स्नातक स्तर तक। कई विश्वविद्यालयों में पी० एच० डी० तक करवाया जाता है, जब कि डॉक्टरेट (क्रियात्मक संगीत) की पढ़ाई एक या दो ही विश्वविद्यालयों (का० हि० वि० वि० तथा खैरागढ़) में है।

कई विश्वविद्यालयों में अन्य विषयों के छात्रों के लाभार्थ डिप्लोमा कक्षाएँ भी चलती हैं। इन शौकिया (Hobby) कक्षाओं तथा डिप्लोमा कक्षाओं की शिक्षा का उद्देश्य अन्य विषयों के छात्रों को संगीत की प्रारंभिक जानकारी कराना तथा उनको अपने देश की समृद्धि सांस्कृतिक विरासत का दर्शन परिचय कराना ही है।

किन्तु विश्वविद्यालय में दी जानेवाली संगीत की उच्च शिक्षा के उद्देश्य भिन्न हैं।

1. छात्र-छात्राओं को संगीत के क्रियात्मक एवं

शास्त्रपक्ष की सांगोंपांग जानकारी करवाना।

2. क्षमताप्राप्त छात्र-छात्राओं को क्रियात्मक संगीत में प्रवीणता पाने के लिए उनका मार्ग प्रशस्त करना।
3. योग्य एवं जानकार संगीत शिक्षक तैयार करना।
4. छात्र-छात्राओं में नवीन रचना करने की क्षमता विकसित करना।
5. संगीत में शोध-कार्य का मार्ग प्रशस्त करना।

आज प्रायः पचास वर्षों से विश्वविद्यालयों के अंतर्गत दी जा रही संगीत-शिक्षा अपने उद्देश्यों को पूरा करने में क्या सक्षम रही है? इस स्तर पर क्या-क्या समस्याएँ हैं? क्या-क्या कठिनाइयाँ हैं? आदि प्रश्नों के विषय में गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है।

अक्सर परंपरावादी कलाकार घरानेदार उस्तादों द्वारा विश्वविद्यालयी संगीत-शिक्षा की खिल्ली उड़ायी जाती है या उनके द्वारा इस संगीत-शिक्षा को हेय दृष्टि से देखा जाता है। उनका प्रमुख आरोप यह है कि उच्चतम डिग्रियाँ पा कर भी वहाँ से कोई अखिल भारतीय स्तर का कलाकार क्यों नहीं निकल पाता। उनका यह विचार या आरोप दोषपूर्ण है। संगीत-शिक्षा उसके उच्च स्तर पर व्यक्तिनिष्ठ है। सामूहिक रूप में शिक्षा देने पर कलाकार बना पाना वास्तव में बहुत कठिन है। जहाँ तक उच्च स्तरीय कलाकार (पं० भीमसेन जोशी, पं० जसराज, पं० रविशंकर) की बात है, कोई व्यक्ति या कोई गुरु या कोई संस्था इन्हें बना नहीं सकती। ये कलाकार अपने कई पूर्वजन्मों की संचित प्रतिभा लेकर जन्म लेते हैं। कुछ वर्षों तक योग्य गुरु के मार्गदर्शन के पश्चात् वे अपनी साधना के बल पर अपनी कला में क्रमशः निखार लाते जाते हैं। उच्च कलाकार बनने के लिए शिक्षा एवं श्रम के साथ-साथ भाग्य तथा अंत में भगवान की कृपा की भी आवश्यकता होती है। वास्तव

में कलाकार बनाये नहीं जा सकते, वह तो ईश्वर की देन हैं। रेखांकित करने की बात यह है कि जब विश्वविद्यालय के अन्य विभाग जैसे गणित विभाग से यह अपेक्षा नहीं रखी जाती कि यहाँ से आर्यभट्ट या अइन्स्टाइन निकलेंगे अथवा अंग्रेजी विभाग से कोई नहीं पूछेगा कि आपने कितने शेक्सपीयर पैदा किये तो फिर एक मात्र संगीत विभाग से ही क्यों इतनी बड़ी अपेक्षाएँ रखी जाती हैं ?

आज हम जीवन के हर क्षेत्र में गिरावट तथा गिरता स्तर अनुभव करते हैं। आज मनुष्य के चिन्तन में भी खोटा आ चुकी है। इसकी वजह से सभी क्षेत्रों में गिरावट का अनुभव होता है, विश्वविद्यालय भी इससे अछूते नहीं रह सकते। अन्य विभागों की तरह संगीत के विभागों में सुविधाओं के बाद भी गुणात्मक स्तर में गिरावट आयी दिखती है। इसके बहुत से कारण हैं। एक कारण है विद्यार्थियों की संख्या का अधिक्य। हर वर्ष सीटों की संख्या बढ़ाने की संस्तुति की जाती है। कई विद्यालयों में बी० ए० संगीत की कक्षाओं में तीस-चालीस छात्रों की भर्ती की जाती है। इतने बड़े समुदाय को क्रियात्मक संगीत की शिक्षा देना तथा संगीत की सक्षमताओं को समझना बहुत ही कठिन हो जाता है। इतने बड़े समुदाय में कौन क्या गलती कर रहा है यह पकड़ना भी संभव नहीं होता है। कुछ विभागों में छात्र की सांगीतिक अभिरुचि या उसकी क्षमता का आकलन बिल्कुल भी नहीं किया जाता। खुली भर्ती कर ली जाती है। कई बार छात्र या छात्रा अन्य कई विषय पढ़ने में अक्षम होने पर संगीत में भेज दिये जाते हैं। ऐसे कम बुद्धि वाले तथा सांगीतिक प्रतिभाहीन छात्रों को संगीत सिखाने में शिक्षक को बहुत कठिनाई होती है। ऐसे छात्रों का प्रवेश प्रतिभावान छात्रों के लिए भी सिरदर्द बन जाता है।

दूसरी समस्या साधनों की है। कोई-कोई नव स्थापित विभागों में वाद्य-यंत्रों की कमी, शिक्षकों की कमी, तबला

संगतकार की कमी, अच्छे पुस्तकालय की कमी तथा अच्छी आडियो लाइब्रेरी तथा टेपरेकार्डर आदि की कमी होती है। यदि संगीत विभाग खोलना या चलाना हो तो न्यूनतम कुछ आवश्यकताओं को पूरा करना ही होगा, यह प्रावधान बन जाना चाहिए।

विश्वविद्यालयी संगीत-शिक्षा के गिरते स्वर के लिए एक प्रमुख कारण साल में काम के दिन बहुत कम होना है। दो वेकेशन, बावन-रविवार, प्रत्येक सम्प्रदाय के त्योहार, नेताओं के जन्म-मृत्यु दिन, राष्ट्रीय पर्व आदि के बाद हड़तालें, धरना, बंद, सांप्रदायिक तनाव, चक्का-जाम, छात्रसंघ शिक्षक संघ के चुनाव, आदि-आदि कारणों से वर्ष 125-150 ही काम के दिन रह जाते हैं, उसमें कभी शिक्षक छुट्टी पर तो कभी छात्र छुट्टी पर। संगीत-शिक्षा में एक आवश्यक शर्त नियमितता की है जो यहाँ कभी पूरी नहीं हो पाती, और इस अनियमित शिक्षा के बाद कैसे बेहतर फल की आशा की जा सकती है ?

जैसा कि सर्वविदित है संगीत के स्वतंत्र संकाय कुछ ही विश्वविद्यालयों में हैं। वहाँ पढ़ने के लिए दूर-दूर से छात्र आते हैं। इनको छात्रावास की समस्या का सामना करना पड़ता है। छात्रावास में अन्य विषयों के छात्र इनके गाने बजाने पर, रियाज करने पर आपत्ति करते हैं। इनका रियाज उनकी पढ़ाई में बाधा बन जाता है। ऐसे में संगीत के छात्र कहाँ जायँ क्या करें ?

संगीत के छात्र घर में या छात्रावास में किस प्रकार तथा कितना रियाज करते हैं, उसकी कोई निगरानी रखने का साधन शिक्षक के पास नहीं होता। रियाज की निगरानी न हो पाने से बहुत बार गलत रियाज हो जाता है, जो बहुत हानिकारक सिद्ध होता है।

एक प्रमुख समस्या छात्रों के अनुशासन की है। वैसे तो किसी भी विषय को पढ़ने के लिए शिक्षक के लिए छात्र

के मन में आदर तथा श्रद्धा दोनों आवश्यक है। संगीत विषय में तो गुरु का, शिक्षक का स्थान बहुत ऊँचा है। आजकल सभी विश्वविद्यालयों में अनुशासन के क्षेत्र में गिरावट आयी है। संगीत के विद्यार्थी भी इससे भला अछूते कैसे रहते! पूरे विश्वविद्यालय के वातावरण का उन पर भी प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। संगीत-शिक्षा के लिए अनुशासन बहुत आवश्यक है। अनुशासन के बिना संगीत की साधना नहीं की जा सकती। आज अधिकांश छात्र न तो कड़ी मेहनत करना चाहते हैं, न तो उनके मन में गुरुजनों के प्रति आदर ही रहता है। छात्रों की माँगें पूरी न होने पर वे शिक्षकों के साथ, अधिकारियों के साथ दुर्व्यवहार भी करते हैं। छात्र-उदण्डता के कारण शिक्षक अपमानित महसूस करता है, मर्माहत रह जाता है। ऐसे में बेमन से सिखाई गयी विद्या का कितना लाभ छात्रों को मिल सकता है?

विश्वविद्यालयों में किसी भी विषय के शिक्षक नियुक्त करते समय जो विशेष सावधानी रखनी चाहिए वह अन्यान्य कारणों से नहीं रखी जाती। संगीत के शिक्षक नियुक्त करते समय उनका ज्ञान तथा वे कैसे गा-बजा लेते हैं, यह जानने के उपरान्त यह जानना भी बहुत आवश्यक है कि वे किस प्रकार सिखा सकते हैं। क्योंकि हर अच्छा गाने-बजाने वाला कलाकार अच्छा शिक्षक भी हो, यह

आवश्यक नहीं। नियुक्ति के बाद कई शिक्षक विश्वविद्यालय को ऊँची कूद के लिए फुटबाल की तरह समझने लगते हैं। उनको इस मनःस्थिति से विरत रहते हुए त्याग-भावना से तथा उदारमन होकर शिक्षा देनी चाहिए।

विश्वविद्यालय को मिलने वाले अनुदान में से संगीत विभाग का बहुत ही न्यून हिस्सा होता है। यहाँ की आवश्यकताओं को बहुत गंभीरता से नहीं लिया जाता है। इसके ठीक विपरीत तकनीकी, चिकित्सा, कृषि, विज्ञान, वाणिज्य आदि विभागों में अर्थभाव की समस्या नहीं होती। सम्बद्ध अधिकारी संगीत विषय की विशेषता को समझ नहीं पाते तथा इसे भी अन्य विषयों के समकक्ष समझ कर अन्य विषयों के नियम संगीत में भी लागू कर देते हैं। इससे संगीत की हानि होती है।

यदि छात्र, शिक्षक, पेशेवर कलाकार तथा विश्वविद्यालय के अधिकारी (कालेज प्रबंधक) ये सभी मिलकर इन समस्याओं पर गंभीरता के साथ विचार करें तभी कोई समुचित रास्ता निकल सकता है और विश्वविद्यालयों से भी संगीत के अच्छे सुविज्ञ छात्र बाहर आ सकेंगे तथा समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकेंगे और तभी विश्वविद्यालयी संगीत शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति हो सकेगी।

सामगान में प्रयुक्त सप्त स्वरों के संकेत इस प्रकार हैं:-

1. कृष्ट स्वर अँगूठे को खुला रखकर दिखाया जाता है। इसका बोधक अंक 7 है।
2. प्रथम स्वर अँगूठे के मध्य पर्व पर होता है। इसका बोधक अंक 1 है।
3. द्वितीय स्वर तर्जनी के मध्य पर्व पर होता है। इसका बोधक अंक 2 है।
4. तृतीय स्वर मध्यमा के पर्व पर है। इसका बोधक अंक 3 है।
5. चतुर्थ स्वर अनामिका के मध्य पर्व पर है। इसका बोधक अंक 4 है।
6. मन्द्रस्वर कनिष्ठिका के मध्य पर्व पर है। इसका बोधक अंक 5 है।
7. अतिस्वार्य स्वर कनिष्ठिका के नीचे पर्व पर है। इसका बोधक अंक 6 है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत में तन्त्र वाद्यों की भूमिका एवं अन्तर्भूत उल्लेखनीय परिदृश्य

-जय प्रकाश सिंह 'सुरमणि'

पं० शाङ्गदेव ने "संगीत रत्नाकर" में संगीत की परिभाषा करते हुए लिखा है—

“गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते ।” अर्थात् गायन, वादन तथा नृत्य तीनों कलाओं के समावेश को संगीत कहते हैं। वस्तुतः आधुनिक युग के संगीत में उक्त तीनों कलाओं का पृथक् एवं स्वतन्त्र प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में दृष्टिगोचर होता है। उक्त तीनों कलाओं अर्थात् गीत, वाद्य एवं नृत्य में गीत को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। वाद्य-गीत का अनुगमन करता है तथा नृत्य वाद्य का। यहाँ प्रस्तुत अध्याय में हमें भारतीय संगीत में प्रयुक्त तन्त्र की प्राचीनता, महत्व, योगदान, स्थान, प्रयोग एवं उनकी वादन सामग्री पर विचार करना है। तन्त्रवाद्य से तात्पर्य उन स्वर-वाद्यों से है जिन पर स्वरोत्पादन तौत अथवा लोहा, इस्पात या एलुमिनियम से निर्मित तारों पर प्रहार करके अथवा घर्षण के द्वारा किया जाता है। प्राचीन काल में जब धातु के तारों का विकास नहीं हुआ था तब वीणादि वाद्य यन्त्रों पर तौत का प्रयोग किया जाता था किन्तु आधुनिक युग में तौत का स्थान लोहा, इस्पात एवं एल्युमिनियम से निर्मित तारों ने ले लिया है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत में तन्त्र वाद्यों की प्राचीनता

भारतीय शास्त्रीय संगीत में तन्त्रवाद्यों का प्रयोग प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। महर्षि भरत ने भी

अपने ग्रंथ में “नाट्य शास्त्र” में चित्रा-आदि वीणाओं का उल्लेख करते हुए उनके धारण एवं वादन-विधि पर प्रकाश डाला है। महर्षि भरत के परवर्ती ग्रन्थकारों ने भी वीणाओं के विषय में अपने-अपने ग्रन्थों में व्यापक चर्चा की है। चित्रा वीणा के सम्बन्ध में भरत मुनि ने लिखा है :—

“सप्त तन्त्री भवेच्चित्र”, ना०शा० 29/996 अर्थात् चित्रा वीणा में सात तन्त्रियों का प्रयोग होता है इसी का वर्णन नान्यदेव ने इस प्रकार किया है—

“मातङ्गेन वादकस्तस्याश्चैत्रिको नाम्नापरः”

भरतभाष्य

अर्थात् “बृहद्देशी” के रचयिता मतंग मुनि चित्रावीणा के वादक थे। संगीत मकरंद, संगीत सुधा आदि ग्रन्थों में चित्रादि वीणाओं का वर्णन करते हुए इसमें सप्त तन्त्रियों के होने की सूचना दी है। लिखा है कि इन समस्त वीणाओं में इक्कीस तन्त्रियों वाली मत्त को किला नामक वीणा प्रमुख है। रत्नाकर कार ने वीणा की वादन-विधि पर भी अपने ग्रन्थ में प्रकाश डाला है।

महर्षि भरत के काल से पूर्व तथा बाद में कन्दराओं तथा देवालयों आदि में निर्मित प्रस्तर प्रतिमाओं में चित्रित वाद्य यन्त्रों में चार-पाँच प्रकार की वीणाओं का ही चित्रण मुख्य रूप से हुआ है ऐसा इसलिए क्योंकि किसी काल विशेष में किसी वाद्य विशेष का चित्रण ही किसी शिल्पी के लिए स्वाभाविक हो सकता है। एवं कला कृतियों में

प्रदर्शित वाद्य यन्त्रों पर बिहंगम दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होता है कि भारतीय शास्त्रीय संगीत में तन्त्रवाद्यों का विशेष स्थान प्राचीन काल से ही रहा है।

आधुनिक काल में वीणा शब्द का तात्पर्य एक वाद्य विशेष से समझा जाता है जिसके कुछ प्रकार भी प्रचलित हैं। अधुनाप्रचलित संगीत में दृष्टिगोचर होते हैं, जैसे विचित्र वीणा, रुद्र वीणा, सरस्वती वीणा इत्यादि किन्तु प्राचीन काल में वीणा शब्द का प्रयोग सामान्य रूप से सभी तन्त्र वाद्यों के लिए किया जाता था जिनको उनमें स्वरूप भेदों के आधार पर विकसित नामों से सम्बोधित किया जाता था। जैसे एक तन्त्री वीणा, विपंची वीणा, चित्रा वीणा, आलापिनी वीणा, पिना की वीणा, मत्त कोकिला वीणा, आदि। इन्हीं वीणाओं की बनावट एवं तंत्रियों में वाद्यों का जन्म हुआ। उदाहरणार्थ महर्षि भरत ने जिन वीणाओं का वर्णन किया है उनमें चित्रा वीणा का स्थान प्रमुख है। भरत कृत “नाट्य शास्त्र” दूसरी शताब्दी का ग्रन्थ माना जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि चित्रा वीणा का दूसरी शताब्दी में अत्यधिक प्रचार था। यह सातवीं शताब्दी तक रहा किन्तु किन्नरी एवं एक तन्त्री वीणाओं के तत्कालीन संगीत जगत में आ जाने से चित्रा का प्रचार सातवीं से लेकर तेरहवीं शताब्दी तक मन्द पड़ गया। फिर रबाब नामक वाद्य के रूप में सामने आयी और इस वाद्य ने सैनियाँ घाने के तन्त्रकारों द्वारा अपना लिए जाने के कारण संगीत जगत में अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया चित्रा वीणा के इस रबाब-रूप में फिर 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में परिवर्तन आया जिसके फलस्वरूप सुर श्रृंगार तथा सरोद नामक वाद्यों का जन्म हुआ जिसमें से सरोद आधुनिक युग का बहुचर्चित एवं संगीत जगत में प्रतिष्ठित तन्त्र वाद्य है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत में तन्त्र वाद्यों का महत्व

भारतीय शास्त्रीय संगीत में तन्त्रवाद्यों का विशेष महत्व प्राचीन काल से ही रहा है। वाद्य संगीत में संगीत के मूल तत्व ‘स्वर तथा लय’ के माध्यम से किसी अन्य सांगीतिक तत्त्व की सहायता के बिना मनुष्य को अलौकिक आनन्द प्रदान करने की अद्भुत क्षमता विद्यमान है। संगीत के द्वारा उत्कृष्ट अभिव्यञ्जना का जितना विस्तार वाद्य संगीत में सम्भव है उतना गान एवं नृत्य में नहीं है। अपनी कला की अभिव्यक्ति के लिए वाद्य संगीत किसी अन्य कला की अपेक्षा नहीं रखता है, अर्थात् अपनी कलाभिव्यक्ति के लिए वाद्य संगीत पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र है जबकि अन्य कलाएँ ‘गान एवं नृत्य’ अपने सफल प्रदर्शन के लिए वाद्य संगीत की अपेक्षा रखती हैं। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि कलाओं का सफल प्रदर्शन वाद्यों के अभाव में सम्भव नहीं है। उदाहरणार्थ संगीत एवं नृत्य को ले सकते हैं। गायक एवं नर्तक अपनी-अपनी कला के प्रदर्शन हेतु वाद्यों के सहयोग की अपेक्षा रखते हैं। इसी प्रकार नाट्य को सजीव एवं प्रभावशाली बनाने के लिए वहाँ भी वाद्यों का विधान आवश्यक माना है।

वाद्य संगीत के अन्तर्गत तन्त्र वाद्यों का विशेष महत्व है। प्राचीन काल में कंठ की संगति के लिए वीणा को ही उपयुक्त वाद्य माना गया था क्योंकि मानव कंठ की सूक्ष्म सांगीतिक क्रियाओं को वीणा जैसे समर्थ तन्त्र वाद्य पर ही बजाना सम्भव था। आधुनिक काल के भारतीय शास्त्रीय संगीत में कण्ठ की संगति के लिए सारंगी को उपयुक्त वाद्य माना जाता है। सारंगी के अतिरिक्त वायलिन से भी गाने की संगीत की जाने लगी है। कर्नाटक संगीत में तो कंठ की संगति के लिए वायलिन का ही सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है।

कण्ठ की संगति के आतिरिक्त नृत्य के साथ बजाने वाला लहरा या गीत को सारंगी पर ही बजाने की प्रथा है। हालांकि आधुनिक काल में लहरा वादन के लिए हारमोनियम का प्रयोग किया जाने लगा है। कंठ की संगति भी आजकल हारमोनियम पर की जाने लगी है किन्तु लेखक के विचार से गले की संगति के लिए हारमोनियम उपयुक्त वाद्य नहीं हो सकता क्योंकि गले की समस्त क्रियाओं को हारमोनियम पर बजाना सम्भव नहीं है। अतैव कंठ की संगति के लिए सारंगी एवं वायलिन जैसे तन्त्र वाद्य ही उपयुक्त हो सकते हैं।

उपयुक्त विवरण से यह पूर्णतया स्पष्ट है कि भारतीय संगीत में तन्त्र वाद्यों का इसलिए भी विशेष महत्व है कि वे अपनी कला के प्रदर्शन के लिए गान एवं नृत्य से पूर्णतः स्वतन्त्र हैं। जबकि गान एवं नृत्य स्वतन्त्र नहीं हैं।

“गीत वाद्य से उत्पन्न होता है” रत्नाकरकार के इस वचन से भी तन्त्रवाद्यों की महत्ता प्रकट होती है। उक्त कथन का अर्थ हम इस प्रकार समझ सकते हैं कि श्रुति, ग्राम, मूर्छनादि के निर्माण हेतु तंत्र तथा सुषिर वाद्यों को ही प्रमाण माना जाता है। अतः स्वर सम्बन्धी प्रमाण-निर्धारण के लिए वाद्यों का होना आवश्यक है। इस अर्थ में “गीत का वाद्यों में उत्पन्न होना समझा जा सकता है। तन्त्र वाद्यों का सम्बन्ध गीत के स्वर पक्ष से है। अतः इनका योगदान श्रुति, ग्राम मूर्छनादि की सिद्धि के लिए समझना चाहिए संभवतः इसीलिए कहा है कि “गीत वाद्य से उत्पन्न होता है”। प्राचीन काल में श्रुति, ग्राम तथा मूर्छनादि की सिद्धि के लिए वीणा को ही उपयुक्त समझा जाता था। क्योंकि वीणा के 36 इंच लम्बे तार पर मूर्छनादि क्रियाओं का प्रयोग सरलता से किया जा सकता है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत में वाद्य वर्गीकरण के अन्तर्गत तन्त्र वाद्यों का स्थान

तन्त्र वाद्यों को भारतीय वाद्यों के वर्गीकरण के अन्तर्गत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इस तथ्य को समझने के लिए भारतीय वाद्यों के वर्गीकरण की संक्षिप्त चर्चा करना यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है।

नाद के दो भेद माने गये हैं। पहला अनाहत और दूसरा आहत। आहत अर्थात् जिसे सुना एवं समझा जा सकता है, तथा जो इन्द्रियों द्वारा आसानी से ग्रहण किया जा सकता है। और जो व्यावहारिक भी है। अनाहत अर्थात् जो स्थूल एवं भौतिक नहीं है। सामान्य मनुष्य इसे इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं कर सकता अर्थात् जो इन्द्रियातीत है। यह योगी-जनों को समाधि की अवस्था में श्रवणगोचर होता है। संगीत में आहत नाद का ही प्रयोग होता है। यही आहत नाद अपनी पाँच प्रकार की ध्वनियों से युक्त संगीत में प्रयुक्त होता है, जिसे सांगीतिक ध्वनियाँ कहते हैं। वास्तव में इन्हें उपरोक्त वर्णित ध्वनियाँ कहते हैं। आहत नादोत्पन्न ध्वनियों के आधार पर ही भारतीय शास्त्रीय संगीत में समस्त वाद्यों का वर्गीकरण किया गया है।

संगीत मकरन्द नामक ग्रन्थ में नारद ने उक्त पाँच ध्वनियों की व्याख्या करते हुए लिखा है। “अनाहतः आहतश्चेयत द्विविधोनादस्तरतः। सोऽप्याहतः पञ्च विधोनादस्तु परिकीर्तितः नखज, वायुज, चर्माणि लौह शरीरजस्तथा।” अर्थात् अनाहत एवं आहत से नाद के दो प्रकार होते हैं। उसमें से भी आहत नाद के पाँच भेद होते हैं। नखज, वायुज, चर्मज, लौहज तथा शरीरज। इस प्रकार वीणादि तन्त्र वाद्य नखज, वेणु आदि वायुज, मृदंग आदि चर्मज मंजीरा आदि लौहज तथा मानव कंठ को शरीरज ध्वनि माना गया है। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि नारदादि ग्रंथकारों ने पाँच प्रकार की ध्वनियों के अन्तर्गत

कंठ ध्वनि को भी शामिल किया है। वास्तव में प्राचीन काल में मानव शरीर को ही “शरीरी-वीणा” कहकर सम्बोधित किया जाता था और इसलिए प्राचीनों ने वाद्य ध्वनियों के अन्तर्गत कंठ ध्वनि को भी शामिल किया है। उक्त पाँच प्रकार की ध्वनियों को उत्पन्न करने वाले वाद्यों को “पंच महावाद्यानि” की संज्ञा दी गयी है। इनमें से एक ईश्वर प्रदत्त (प्राकृतिक) तथा अन्य चार वाद्य मानव द्वारा निर्मित है। यथा—

“एकं ईश्वर निर्मित नैमार्गिकम् अन्यच्चतुर्विधं मनुष्यनिर्मित चेति पञ्च प्रकारः महावाद्यानाम्। (नारदीय शिक्षा)

भरत कोष में भी इन ध्वनियों की संख्या पाँच ही मानी गयी है। कोहल ने उक्त पाँच प्रकार की ध्वनियों को स्वीकार करते हुए लिखा है—

“पंचधा च चतुर्धाम् च-.....

कोहलस्य मतेख्यातम् पंचधावाद्यमेव च” (संगीत चूडामणि)

महर्षि भरत तथा दत्तिल आदि ने इनकी संख्या चार ही मानी है। “भरतेन वाद्यम् चतुर्विधम् प्रोक्तम्।” इस प्रकार उपरोक्त उद्धृत वचनों से ज्ञातव्य है कि वाद्य ध्वनियों के सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद प्राचीन काल से ही विद्यमान है किन्तु अधिकांश ग्रन्थकारों ने वाद्य ध्वनियों के अन्तर्गत कंठ ध्वनि को भी शामिल किया है। उन्होंने इनकी संख्या पाँच मानी है। कुछ विद्वानों ने इनकी संख्या केवल तीन ही मानी है। तदनुसार उन्होंने स्वीकार किया है किन्तु इन विद्वानों ने चौथे को न मानने का कोई स्पष्ट कारण नहीं बताया है।

उपर्युक्त वाद्यों के द्वारा उत्पन्न चार प्रकार की ध्वनियों के आधार पर ही भारतीय शास्त्रीय संगीत में वाद्यों का

वर्गीकरण किया गया है। महर्षि भरत ने उक्त वर्गीकरण के विषय में इस प्रकार लिखा था।

“ततं चैवावनद्धं च घनं सुषिरमेव च”

चतुर्विधं तु विज्ञेयमातो घ लक्षणान्वितम्।

नाट्यशास्त्र

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन काल में ही वाद्यों का पर्याप्त विकास हो चुका था उनके अवलोकन के आधार पर महर्षि भरत का वर्गीकरण वैज्ञानिक तर्क संगत एवं उचित प्रतीत होता है। उनके अनुसार तत, अवनद्ध, घन, सुषिर, क्रमशः तन्त्र वाद्य पुष्कर वाद्य, ताल वाद्य एवं वंशी वाद्य हैं। महर्षि भरत के उपरोक्त वचन से यह भी संकेत प्राप्त होता है कि उस समय समस्त वाद्यों के लिए आतोद्य शब्द का प्रयोग किया जाता था। महर्षि वाल्मीकि एवं महाकवि कालीदास ने भी अपने साहित्य में बहुवाद्य सूचक रूप में “तुर्य” शब्द का प्रयोग किया है। महाभारत में भी उक्त अर्थ में “तुर्य” शब्द का ही आतोद्य के लिए प्रयोग किया गया है। महर्षि भरत के द्वारा प्रतिपादित वाद्यों के वर्गीकरण को ही परवर्ती ग्रन्थकारों ने सर्वसम्मति से स्वीकार किया है। हालाँकि मध्यकाल में तानसेन तथा कुछ अन्य कलाकारों की सांगीतिक रचनाओं में अवनद्ध के स्थान पर वितत शब्द का प्रयोग भी किया गया है यथा—

तत को पहिले कहत है वितत दूसरो जान।

तीजों घन चौथे सिषर तानसेन परमान ॥

तार लगे सब साज के सो तत ही तुम मान।

चरम मद्दयो जाको मुखर वितत सु कहे बखान ॥

कंस ताल के आदि दै धन जिए जानहु मीत।

तानसेन संगीत रस बाजत सिखर पुनीत ॥

—तान सेन कृत ‘संगीत सार’

इसी प्रकार की अन्य अनेकों रचनाओं में अवनद्ध के स्थान पर वितत शब्द का प्रयोग किया गया है। तानसेन के पूर्व वाचनाचार्य सुधाकलश के ग्रन्थ 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' तथा 'संगीत चूडामणि' नामक ग्रन्थों में भी वितत शब्द का प्रयोग हुआ है। पाली साहित्य में भी वाद्य वर्गीकरण के अन्तर्गत तत् के स्थान पर आतत तथा अवनद्ध के लिए वितत शब्द का ही प्रयोग मिलता है। किन्तु आधुनिक काल में कुछ विद्वानों ने वितत शब्द को पर्याय के रूप में न प्रयोग करके उसे तत के अन्तर्गत ही शामिल कर दिया है अर्थात् तत से तात्पर्य उन तन्त्र वाद्यों से है जिन्हें मिजराब या जबा से प्रहार करके बजाया जाता है, जैसे सितार, सरोद, इत्यादि तथा वितत से अभिप्राय उन तन्त्र वाद्यों से है जिन्हें कमानी या गज से बजाया जाता है जैसे बेला, सारंगी, दिलरुबा इत्यादि, शेष के लक्षण प्राचीन ही है। वास्तव में महर्षि भरत द्वारा प्रतिपादित चतुर्विध वाद्यों का वर्गीकरण ही वैज्ञानिक एवं तर्क की कसौटी पर खरा उतरता है।

वस्तुतः भारतीय शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत वाद्यों के वर्गीकरण से यह पूर्णतः स्पष्ट है कि उपरोक्त वर्गीकरण में तन्त्र वाद्यों को विशेष महत्व प्रदान किया गया है। इस विषय में यह उल्लेखनीय है कि प्रायः सभी ग्रन्थकारों ने अपने-अपने वर्गीकरण में तत अर्थात् तन्त्र वाद्यों को ही सर्वप्रथम स्थान दिया है। चतुर्विधवाद्यों के नाम को वाद्य वर्गीकरण के अन्तर्गत किसी भी क्रम में रखा जा सकता था। किन्तु प्राचीनों ने तत को ही वाद्य वर्गीकरण में प्रथम स्थान क्यों प्रदान किया ? इस सम्बन्ध में मेरा यह मत है कि चूँकि तत् अवनद्ध, घन एवं सुषिर वाद्यों में तत् प्राचीन काल से ही संगीत के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता आ रहा है। सुषिर वाद्यों का आविष्कार सम्भवतः तत् वाद्यों के पश्चात् हुआ हो। इसलिए भी तत् को वाद्य वर्गीकरण में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ हो। ऊपर हम देख चुके हैं कि विद्वानों ने चार के स्थान पर तीन प्रकार के ही वाद्यों

को वर्गीकरण में स्थान दिया है। उन्होंने तत, अवनद्ध एवं घन इन तीनों को ही अपनाया है। उन्होंने सुषिर वाद्य को वाद्य वर्गीकरण में न रखने के लिए कोई स्पष्ट कथन नहीं बताया है फिर भी ध्यान देने योग्य बात यह है कि त्रिविध वाद्यों के वर्गीकरण में भी तत को पहले स्थान पर ही रखा गया है। चतुर्विध में वाद्यों ततवाद्य इसलिए भी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं क्योंकि तत, अवनद्ध, घन एवं सुषिर इन चार प्रकार के वाद्यों में स्वर सम्बन्धी कार्य तत एवं सुषिर वाद्यों से ही किया जाता है। अवनद्ध वाद्यों द्वारा गीत का उपरंजन होता है तथा घन वाद्य ताल रखने का कार्य करते हैं। हालाँकि आधुनिक युग में ताल सम्बन्धी कार्य-सम्पादन भी अवनद्ध वाद्यों के द्वारा ही किया जाता है। वैसे कर्नाटक संगीत में आज भी घन वाद्य ही ताल प्रदर्शित करने का कार्य करते हैं। स्वर एवं लय ये दोनों संगीत के मूल तत्व के रूप में माने गये हैं किन्तु इन दोनों में यदि ध्यान से देखा जाय तो स्वर पक्ष अधिक बलवान होता है। एवं सुषिर वाद्यों का प्रयोग गीत की संगति के लिए किया जाता है किन्तु कंठ की सूक्ष्मतर क्रियाओं को वीणादि वाद्यों पर ही आसानी से सफलता पूर्वक प्रकाशित किया जा सकता है। जबकि सुषिर वाद्यों पर गले की समस्त क्रियाओं का प्रदर्शन करना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए भी तन्त्र वाद्य समस्त वाद्यों में महत्वपूर्ण स्थान पाते हैं।

भारतीय शास्त्रीय संगीत में तन्त्र वाद्यों का प्रयोग

प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक भारतीय शास्त्रीय संगीत में तन्त्र वाद्यों का प्रयोग मुख्यतः दो रूपों में किया जाता रहा है। एक, गीत अथवा गान की संगति के रूप में और दो, स्वतन्त्र वादन के रूप में। वैदिक काल का संगीत धार्मिक अनुष्ठानों एवं क्रियाकलापों से पूर्णरूपेण प्रभावित था। उस समय यज्ञादि के अवसरों पर जो गान

प्रस्तुत किया जाता था उसकी संगति वीणा से की जाती थी साथ ही साथ वीणा वादन गायन से पृथक् अर्थात् स्वतन्त्र रूप में भी प्रस्तुत करने की परम्परा थी। 'बाण' नामक वीणा का वैदिक युग में सर्वाधिक प्रचार था। विद्वानों का यह अनुमान है कि इस वीणा का वादन अधुना प्रचलित संतूरवाद्य की भाँति लकड़ी की सलाखों से किया जाता था। उक्त वीणा वैदिक काल में प्रत्येक शुभ एवं सांगीतिक अवसरों पर बजायी जाती थी। नाट्य शास्त्र में उपलब्ध संगीत सम्बन्धी प्रकरणों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस युग में भी लोग वीणा वादन से पूर्ण-रूपेण परिचित हो चुके थे एवं वीणा वाद्य का पर्याप्त विकास हो चुका था। वीणा वाद्य के वर्णालंकारों के लिए धातु शब्द का प्रयोग किया जाता था। उस काल में वीणा वादन विलम्बित, मध्य एवं द्रुत, इन तीनों प्रकार की लयों के अनुसार त्रिविध रूप में किया जाता था।

महर्षि ने गीत के दो प्रकार बताये हैं। पहला निर्गीत एवं दूसरा बहिर्गीत। निर्गीत अर्थात् जो स्वरयुक्त किन्तु पद भाषा की दृष्टि से सार्थक नहीं होता। निर्गीत को शुष्क वाद्यों ही कहा गया है; किन्तु यही निर्गीत नाट्य के पूर्व रंग में जब प्रयुक्त होता है तब उसे बहिर्गीत कहते हैं। भरतोक्त गीत में दोनों प्रकारों में से निर्गीत वाद्यों के स्वतन्त्र वादन का सूचक है क्योंकि गीत सहित संगीत वाद्य पर ही बज सकता है चूँकि गीत की प्रस्तुति वाद्य पर सम्भव है इससे यह स्पष्ट होता है कि गायी जाने वाली रचनाओं को ही वीणा वादक स्वतन्त्र वादन ने रूप में भी प्रयोग करते थे, जिसे प्राचीनों ने निर्गीत अथवा शुष्कवाद्य की संज्ञा प्रदान की थी।

शाङ्ग देव ने वाद्यों का चतुर्विध विभाजन, उनका प्रयोग, वीणा के भेदों का विस्तृत विवरण, वीणा के पारिभाषिक शब्द एवं वादकों के गुण-दोष आदि अनेक विषयों का विस्तारपूर्वक विश्लेषण किया है। रत्नाकरकार

के अनुसार वाद्यों का प्रयोग चार प्रकार से किया जा सकता है।

1. शुष्क-जो गीत अथवा गान की संगति के बिना प्रयुक्त हो अर्थात् स्वतन्त्र हो।
2. गीतनुग- जो गीत का अनुगमन करे।
3. नृत्यानुग- जो नृत्य का अनुगमन करे।
4. द्वयानुग-जो गीत एवं नृत्य दोनों का अनुगमन करे।

सोमेश्वर ने भी "मानसोल्लास" के वाद्य विनोद नामक अध्याय में उक्त विषय में इस प्रकार लिखा है। यथा—

‘पृथग्वाद्यं भवेदेकं हितीयं गीत संगतम्।

नृत्यानुगं, तृतीयं च तुरीयं गीत तृत्यगम्॥

एवं चतुर्विधं वाद्यं विनोदार्थं महीपतिः ।

(मानसोल्लास)

अर्थात् वाद्यों का प्रथम कार्य स्वतन्त्र वादन दूसरा कार्य गीत की संगति, तीसरा नृत्य का अनुगमन एवं चौथा तथा अन्तिम गीत और नृत्य दोनों की संगति करना है। लिखित वचनों से यह पूर्ण रूप से स्पष्ट है—चूँकि वीणादि तन्त्र वाद्य चतुर्विध वाद्यों में प्रमुख स्थान रखते थे अतः उपरोक्त वचन उन पर भी लागू होते हैं। अर्थात् वीणादि तन्त्र वाद्यों का प्रयोग प्राचीन काल से ही शुष्क निर्गीत अथवा स्वतन्त्र रूप में होता आ रहा है। साथ ही साथ गान की संगति भी इससे की जाती रही है। जो नृत्य किसी गीत के भावों पर आधारित नहीं होता उसमें सारंगी, वायलिन आदि वाद्यों से नृत्य गीत का लहरा प्रस्तुत किया जाता है तथा जो नृत्य गीत के भावों पर आधारित होता है उसमें ये तन्त्र वाद्य गीत एवं नृत्य दोनों की संगति करते हैं। चूँकि आधुनिक युग

में हारमोनियम का प्रचार एवं प्रयोग बढ़ता जा रहा है इसीलिए नृत्य के साथ लहरे का कार्य अधिकांशतः हारमोनियम पर ही सम्पन्न कर लिया जाता है। हालाँकि प्राचीनों ने समस्त वाद्यों का प्रयोग चतुर्विध होने की सूचना दी है, किन्तु मेरे विचार से तंत्र वाद्यों का प्रयोग प्राचीन काल से दो ही प्रकार से तर्कसंगत प्रतीत होता है। पहला स्वतन्त्र वादन के रूप में और दूसरा गीत की संगति के रूप में इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्राचीन काल से लेकर आज तक तंत्र वाद्यों का प्रयोग विभिन्न रूपों में आवश्यकतानुसार होता आ रहा है। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि प्राचीनों द्वारा बताये गये वाद्यों के चतुर्विध प्रयोग में आधुनिक युग में कुछ परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। जैसे प्राचीन काल में घन वाद्य का प्रयोग मुख्य रूप से ताल प्रदर्शित करने के लिए होता था तथा अवनद्ध वाद्यों द्वारा गीत का उपरंजन किया जाता था। अधुना प्रचलित भारतीय शास्त्रीय संगीत में अवनद्ध (तबला तथा पखावज) वाद्यों द्वारा गीतोंपरंजन के साथ-साथ ताल रखने का भी कार्य लिया जाता है। अवनद्ध वाद्यों (तबला एवं पखावज) के स्वतन्त्र वादन के समय सारंगी आदि तंत्र वाद्यों से स्वतन्त्र वादन में प्रयुक्त ताल की मात्राओं पर आधारित गत या लहरा बजाया जाता है जिसके आधार पर तबला या पखावज वादक अपना स्वतन्त्र वादन प्रस्तुत करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि गायन अथवा वादन के समय ताल प्रदर्शित करने का जो कार्य अवनद्ध वाद्य करते हैं वही कार्य अवनद्ध वाद्यों के स्वतन्त्र वादन के समय सारंगी वादक ताल का लहरा या गत बजाकर करते हैं क्योंकि उसी गत या लहरे के आधार पर अवनद्ध वादकों को ताल की मात्राओं का सही ज्ञान होता है। कथक नृत्य के प्रस्तुतीकरण में भी सारंगी आदि वाद्यों से गान की संगत के साथ-साथ ताल धारित लहरे या गत द्वारा लय रखने का भी कार्य किया जाता है क्योंकि तबला वादक एवं नर्तक दोनों ही गत के आधार पर ही

अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं। लहरा के अभाव में मात्राओं का सही ज्ञान होना कठिन है। कर्नाटक संगीत में गायन अथवा वादन के अन्तर्गत सभी कलाकारों को अपनी-अपनी कला को प्रदर्शित करने का स्वतन्त्र अवसर प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ गीत की संगत वायलिन अथवा वीणा, मृदंगम् एवं घटम् आदि गा लेने के पश्चात् कुछ समय के लिए शान्त हो जाता है तब वायलिन या वीणा वादक अपना वादन मृदंग एव घटम् के साथ करते हैं। तत्पश्चात् वायलिन या वीणा वादन भी बन्द हो जाता है, और स्वतन्त्र रूप से मृदंगम् एवं घटम् बारी-बारी से अपना-अपना वादन प्रस्तुत करते हैं तथा कोई एक व्यक्ति अपने हाथ पर ताली देकर ताल की मात्राओं को प्रदर्शित करता है जिसके आधार पर मृदंगम् एवं घटम् बजाया जाता है। अन्त में समस्त कलाकार फिर एक साथ गाने की रचना पर आधारित संगीत प्रस्तुत करने लगते हैं।

अतएवं जहाँ प्राचीन काल में ताल रखने का कार्य घन वाद्य करते थे वही आज अवनद्ध वाद्यों द्वारा ताल रखने का कार्य किया जा रहा है। तन्त्र वाद्य जहाँ केवल गीत की संगति के लिए अथवा स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त होते थे वही ये वाद्य अवनद्ध वाद्यों के तबला या पखावज स्वतन्त्र वादन के समय तथा कथक आदि नृत्यों के अवसर पर गत या लहरा के माध्यम से ताल रखने का कार्य करते हैं। प्राचीन काल में स्वर-वाद्यों (वीणादि वाद्य) के गान एवं नृत्य से पृथक स्वतन्त्र वादन का उल्लेख तो शास्त्रों में प्राप्त होता है किन्तु अवनद्ध वाद्यों के स्वतन्त्र वादन की कोई सूचना नहीं प्राप्त होती है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत में तन्त्र वाद्यों की वादन-सामग्री

भारतीय शास्त्रीय संगीत में तन्त्र वाद्यों की प्राचीनता, उनके महत्व, योगदान, स्थान एवं नानाविध प्रयोगों का

विश्लेषण कर लेने के पश्चात् उन पर बजायी जाने वाली सामग्री के विषय में कुछ चर्चा करना यहाँ समीचीन होगा। हम जानते हैं कि प्राचीन काल में तन्त्र वाद्यों का प्रयोग मुख्य रूप से गान की संगति एवं स्वतन्त्र वादन के रूप में किया जाता था किन्तु स्वतन्त्र वादन में प्रयुक्त तन्त्र वाद्यों की वादन सामग्री गान से पृथक् नहीं थी। प्राचीन काल से लेकर मध्य युग तक ही नहीं अपितु 18 वीं शताब्दी के मध्य तक तन्त्र वादक अपने-अपने वाद्यों पर स्वतन्त्र वादन प्रस्तुत करते समय गायन की सामग्री का ही प्रयोग करते थे अर्थात् गाने की संगत करते समय वे जो कुछ बजाते थे उसी को हूबहू स्वतन्त्र वादन के अवसरों पर भी प्रस्तुत करते थे। महर्षि भरत ने नाट्य शास्त्रों में जाति गायन का वर्णन किया है। जाति गायन को सुन्दर, आकर्षक एवं मनोहारी बनाने हेतु नानाविध वर्णालंकारों का प्रयोग किया जाता था। तत्कालीन संगीत में प्रचलित गायन की शैलियों के आधार पर चार प्रकार की गीतियाँ मानी गई थी। यथा—1- मागधी, 2- अर्धमागधी, 3- सम्भावित, 4 पृथुला। तन्त्र वाद्यों पर स्वतन्त्र वादन के समय यही जाति गायन वादकों द्वारा प्रस्तुत किया जाता था। अर्थात् गायन वादन की सामग्री में कोई अन्तर नहीं था।

मध्य युग में तानसेन के पश्चात् उनकी वंश परम्परा में तन्त्र वाद्यों को काफी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। वास्तव में यह कहना अनुचित न होगा कि सेनिया घराने की सबसे बड़ी देन तन्त्रकारी है। तानसेन के वंशजों ने तन्त्र वाद्यों के क्षेत्र में काफी महारत हासिल की। तानसेन के पश्चात् उनकी वंश परम्परा में कई शाखाएँ विकसित हुईं। 1. बीनकारी का घराना जो आगे चलकर सेनिया घराने के नाम से विख्यात हुआ 2.- ध्रुपदियों का घराना— तानसेन के वंशजों में जो लोग रबाब, वीणा आदि वाद्य बजाते थे उनकी प्रारम्भिक संगीत शिक्षा ध्रुवपद की शिक्षा से ही आरम्भ होती थी। इसी प्रकार प्रत्येक तन्त्र वादक ध्रुपदिया भी होता था क्योंकि किसी भी वाद्य के वादन की शिक्षा

ग्रहण करने के पूर्व प्रत्येक व्यक्ति को गले से दस-पाँच ध्रुवपद एवं होरियों का कंठस्थ करना अनिवार्य समझा जाता था। इस प्रकार ध्रुपद गायन में कुशलता प्राप्त कर लेने के पश्चात् ही कोई व्यक्ति तन्त्र उठा सकता था। जिन लोगों का गला सुमधुर होता था वे ध्रुपद गाते थे। वाद्य नहीं बजाते थे किन्तु बाद में तानसेन की वंश-परम्परा में अधिकांश तन्त्रकार ही हुए। चूँकि तन्त्र वादकों की शिक्षा ध्रुपद अंग पर आधारित होती थी अतएव वे स्वतन्त्र वादन में ध्रुपद की चीजों को ही बताया करते थे। तन्त्र वाद्यों के स्वतन्त्र वादन की यह शैली लगभग 18 वीं शताब्दी तक प्रचलित रही उस समय तक वीणादि वाद्यों पर वादन सामग्री के रूप में ध्रुपद का ही प्रयोग किया जाता था।

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत को तानसेन एवं उनके वंशजों की बहुत बड़ी देन है। उनके वंशजों में श्रेष्ठ गायकों के साथ ही साथ महान तन्त्रकार भी हुए जो आगे चलकर सेनिया घराने के नाम से जाने गए। इसी घराने में उस्ताद मसीत खाँ साहब पैदा हुए जिन्होंने तन्त्र वाद्यों के लिए एक नवीन बाज (वादन-शैली) का निर्माण किया जो आगे चलकर अत्यन्त ही लोक-प्रिय हुई एवं “मसीत खाँनी” बाज के नाम से संगीत जगत में विख्यात हुई। इस प्रकार से तन्त्र वाद्यों की वादन शैली में विशेष परिवर्तन इसी समय से आरम्भ हुआ। मसीत खाँ के पश्चात् 19 वीं शताब्दी में सेनिया घराने में ही उस्ताद रजा खाँ ने जन्म लिया इन्होंने भी एक नवीन बाज को विकसित किया जो आगे चलकर “रजाखानी” बाज के नाम से प्रसिद्ध हुआ, ये दोनों बाजे समस्त तन्त्र वाद्यों के लिए उपयोगी सिद्ध हुए।

उक्त दोनों उस्तादों ने जिन दो बाजों (वादन शैलियों) को विकसित किया उससे उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में तन्त्र वाद्यों की वादन-शैली के क्षेत्र में एक नवीन अध्याय का आरम्भ हुआ जो तन्त्र वाद्यों के वादन में अत्यधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ एवं जिसके फलस्वरूप प्राचीन काल

से चली आ रही तन्त्र वाद्यों की गान पर आधारित सामग्री में एक नवीन परिवर्तन आया जिससे सभी तन्त्र वाद्य प्रभावित हुए।

मसीत खाँनी एवं रजाखानी ये दोनों बाज क्रमशः विलम्बित एवं द्रुत गतों से सम्बन्धित हैं। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि आरम्भ में मसीत खाँ के अनुयायी केवल मसीत खानी बाज को एवं रजा खाँ के अनुयायी केवल रजा खानी बाज को ही बजाया करते थे। किन्तु कालान्तर में ये सभी तन्त्र वादक दोनों ही शैलियों को स्वतन्त्र वादन में स्थान देने लगे। तन्त्र वाद्यों के स्वतन्त्र वादन हेतु सामग्री के उपलब्ध एवं प्रचलित होने के पश्चात् भी 19 वीं से 20 वीं शताब्दी के आरम्भ तक जिस रीति से इनका वादन होता था वह अधुना प्रचलित वादन-शैली से सर्वथा भिन्न था। आरम्भ में मसीत खाँनी गतों के द्वारा राग का सिलसिलेवार विस्तार या पठत गत के बोलों के आधार पर ही मिजराब के बोलों को बदल-बदलकर लिया जाता था किन्तु रजखाँनी गतों में रागागी तोड़े बजते थे।

वर्तमान युग में तन्त्रवाद्यों की वादन-शैली ख्याल गायन से प्रभावित हो गई जिसके फलस्वरूप वाद्यों पर जिनमें सितार प्रमुख है, तोड़े के स्थान पर ताने बजायी जाने लगी हैं, किन्तु सरोद पर अभी भी अधिकतर तोड़े ही बजाये जाते हैं क्योंकि हर प्रकार की तानों को सरोद जैसे वाद्यों पर बजाना सम्भव नहीं है। आधुनिक युग में सितार, सरोद एवं वीणादि वाद्यों पर मसीत खाँनी एवं रजाखाँनी दोनों प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया जाता है। सारंगी एवं वायलिन को ख्याल अंग से बजाया जाता है, क्योंकि इन

दोनों वाद्यों पर कंठ की क्रियाओं को आसानी से प्रदर्शित किया जा सकता है। वायलिन को गतकारी अंग से भी बजाने का प्रचलन है। उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में सारंगी एवं कर्नाटक संगीत में वायलिन से कंठ की संगत की जाती है। वायलिन का प्रयोग संगत के साथ-साथ स्वतन्त्र वादन में भी किया जाता है। इसका वादन गायकी एवं गतकारी दोनों अंगों में सफलतापूर्वक किया जाता है। कुछ बेला वादक गायकी अंग में तथा कुछ गतकारी अंग में अपना वादन प्रस्तुत करते हैं किन्तु कुछ बेला वादक ऐसे भी हैं जिनको उक्त दोनों ही शैलियों पर समान अधिकार प्राप्त है, जैसे वी०जी०जोग, डॉ० आर० पी० शास्त्री आदि।

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन युग से लेकर मध्यकाल तक तन्त्र वाद्यों की वादन-सामग्री गायन पर ही आधारित थी किन्तु 18 वीं 19 वीं शताब्दी में क्रमशः मसीत खाँनी एवं रजाखाँनी नाम के नवीन बाजों (वादन-शैलियों) के आविर्भाव से तन्त्र वाद्यों की वादन-शैली में परिवर्तन आ गया और इस प्रकार वह गायन से स्वतन्त्र एवं पृथक् हो गई किन्तु शैली गत भिन्नता स्थापित हो जाने पर भी आधुनिक युग में गतकारी अंग से व्यवहृत होने वाले वाद्य (जैसे, सितार वीणा, इत्यादि) ख्याल गायन के प्रभाव से अछूते नहीं रहे।

प्रस्तुत चर्चा के माध्यम से तन्त्र वाद्यों की प्राचीनता, महत्त्व, योगदान, स्थान, प्रयोग एवं उनकी वादन-सामग्री आदि पर किंचित् जो भी प्रकाश डाला गया है आशा है संगीत जगत के लिए किसी सीमा तक अवश्य ही उपयोगी सिद्ध होगा, ऐसी आशा है।

संगीत और योग

-आशीष चटर्जी

जो कुछ भी मैं, दो शब्द आपके समक्ष प्रस्तुत करने जा रहा हूँ, वह किसी पुस्तकीय ज्ञान की बात नहीं अपितु ये मेरे कुछ अपने साधनागत अनुभव हैं।

प्राचीन ग्रन्थों में नाद को ब्रह्म (नाद-ब्रह्म) कहा गया है। नाद ब्रह्म का प्रकट और अप्रकट दोनों ही रूप है। प्रकट नाद, अर्थात् आहत नाद, जिसे आघात द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। जिसे हम अपनी श्रवणेन्द्रिय द्वारा ग्रहण कर सकते हैं। परंतु अनाहत नाद इन्द्रियातीत है, वह अनादि है, अनन्त है।

सृष्टि का आरम्भ भी है और अंत भी है। यदि निर्माण है तो विनाश अवश्यमभावी है; किन्तु जिसका कोई निर्माण ही न हो, उसका विनाश कैसा? सत्य के दो पहलू प्रकट और अप्रकट, मूर्त और अमूर्त अथवा साकार व निराकार हैं। अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा मनुष्य जो कुछ अनुभव ग्रहण करता है, साधारणतया वही प्रकट रूप है। श्रवण कर्ण द्वारा, दृष्टि का बोध नेत्र से स्पर्श का बोध त्वचा से, स्वाद का बोध जिह्वा से एवम् गन्ध का बोध नासिका से होता है। पाँचों इन्द्रियों में से किसी भी इन्द्रिय का कार्य न करना हमारे लिए उस इन्द्रिय द्वारा किए गए बोध (ज्ञान) में बाधक होगा। किन्तु क्या संगीत मात्र भौतिक शरीर तक ही सीमित है? एक कलाकार जब मृत्यु को प्राप्त होता है, तो उसकी कला का प्रदर्शन भी वहीं समाप्त हो जाता है, एवम् मृत शरीर की पाँचों इन्द्रियों की स्थिति भी वही होती है। इसी प्रकार यदि हम संगीत को भौतिक शरीर की सीमा

से देखें तो संगीत एक सीमित समय पर आधारित है और यदि हम जन्म-जन्मांतर को मान्यता दें तो हम यह कह सकते हैं कि दूसरा जन्म ग्रहण कर हम उस पूर्व जन्म में अर्जित ज्ञान की ऊँचाई से और ऊपर, चरमोत्कर्ष पर पहुँच सकते हैं। क्या हम इन पाँचों इन्द्रियों से युक्त 'मैं' के द्वारा उस परम लक्ष्य की ऊँचाई तक पहुँच सकते हैं? कदापि नहीं। कबीर ने कहा है -

जब मैं था तब हरि नहीं

जब हरि है मैं नाहिं।

मैं अर्थात् भ्रम की सत्ता, मायाजाल, अविद्यामाया और वहीं "मैं" जो भ्रम के सिवाय कुछ भी नहीं जो वह निर्मित कर सके और उसका भी अन्ततः विनाश ही होना है - चाहे वह तथाकथित (सगुण) भगवान ही क्यों न हों। 'निर्माण' का विनाश होना ही है।

तब हमें उस संगीत से नाता जोड़ना है जिसका कोई निर्माण नहीं, प्रारंभ नहीं और हम जिसे अनाहत नाद कहते हैं, जिसका न कोई आदि है और न ही अन्त। यह चिरन्तन है, शाश्वत है। परन्तु उस अनन्त संगीत को प्राप्त करने के लिए हमें योग में आना होगा। इस योग - सेतु से ही हम निर्विकल्प समाधि तक पहुँच सकेंगे और उस संगीत से नाता जोड़ सकेंगे जो शाश्वत है तथा आद्यनन्त की सीमा से परे है।

मेरे अनुभव के अनुसार संगीत सत्य है, प्रेम है,

परमात्मा है और जब तक हम संगीत के इस सत्य को अनुभूत नहीं कर पाते, हमारी साधना अधूरी है। असत्य मार्ग के द्वारा 'सत्य' का लक्ष्य नहीं पाया जा सकता और जब तक "मैं" रूपी भ्रम है, तब तक सत्-संगीत अप्राप्य है। योग के बिना "मैं" का भेदन असंभव होगा और इस "मैं" के भेदन के बिना संगीत की-वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार भी असंभव होगा। अतएव योग के द्वारा ही हम षट्चक्र को भेदकर अनन्त की यात्रा कर सकते हैं, अर्थात् संगीत-साधन का अंतिम लक्ष्य होगा- 'षट्-चक्र भेदन'।

आज जो संगीत-शिक्षा प्रचलित है, वह इस दृष्टि से सर्वथा अधूरी है जिसके कारण कोई भी कलाकार क्षुद्र सीमा में बँधकर महान कलाकार बनने की चेष्टा करता रहेगा। लोगों से उसे मान-सम्मान, यश, धन सब कुछ प्राप्त होता रहेगा और उसका "मैं" रूपी भ्रम यह समझेगा कि वह एक महान कलाकार है, विश्वविख्यात है, आदि-आदि, लेकिन भीतर से वह कंगाल ही बना रहेगा। अप्रकट रूप में प्रकृति में विराजमान संगीत इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता। हमारे शरीर में छिपा हुआ अशरीर अथवा सूक्ष्म शरीर (एस्ट्रल बॉडी) ही इस संगीत का अनुभव कर सकता है। जब तक मनुष्य अन्नमय कोष में विराजमान है, वह अनाहत स्वर नहीं सुन सकेगा। चौथे आयाम (अनाहत चक्र) में आकर ही मनुष्य को उस सूक्ष्म शरीर का बोध होता है, जो भौतिक शरीर का वाष्प स्वरूप है! वहीं उसे प्रकृति में छिपे उन स्वरों का बोध होगा जो भौतिक शरीर द्वारा संभव नहीं है। और इसी अनुभव से योग का प्रारंभ होता है। अर्थात् संगीत की वास्तविक यात्रा यहीं से प्रारंभ होती है।

चौथे आयाम अर्थात् अनाहत चक्र के पश्चात् मनुष्य पाँचवें आयाम अर्थात् विशुद्ध चक्र में प्रवेश करता है, जहाँ उसे आत्मबोध होता है। सूक्ष्म शरीर तो शरीर का ही वाष्प स्वरूप है, पर आत्मा तो पदार्थ के परे है, जिसका बोध

पदार्थ विज्ञान नहीं कर सकता। पाँचवें आयाम में कलाकार की उपस्थिति होते हुए भी वहाँ कोई कलाकार नहीं रहता है, वहाँ उसका "मैं" नहीं रहता।

छठे आयाम (चक्र) में आत्मा ब्रह्मलीन हो जाती है परमात्म-स्वरूप हो जाती है। ऐसा परमात्म-स्वरूप नाद-साधक यदि हमारे सम्मुख ध्वनि प्रक्षेपित करे तो वह साक्षात् परमात्मा से प्रकट होने वाला स्वर होगा, और यही होगी हमारी योग साधना-संभूत की चरम परिणति और यही होगा षट् चक्र भेदन।

सातवें आयाम अर्थात् सहस्त्रार में विराजमान व्यक्ति पूर्णतया मौन हो जाता है, क्योंकि ऐसी अवस्था में मनुष्य शरीर का शतप्रतिशत तमस् विलुप्त हो जाता है। वह शरीर-बोध के परे हो जाता है और कामानुभूति से मुक्त हो जाता है। शरीर से होते हुए भी वह आत्मा और ब्रह्म से परे अनन्त यात्रा का पथिक हो जाता है।

मेरे विचार से जिस दिन हम संगीत को इस परिदृश्य में देखेंगे तो पायेंगे कि अभी तक जो कुछ भी कर रहे हैं, वह अन्धकार में टटोलने जैसा है, जहाँ यात्रा शुरू होना तो दूर प्रकाश की किरण भी नहीं है। कबीर कहते हैं—

“अवधू गगन मण्डल घर कीजै”—अर्थात् पूर्ण अस्तित्व ही हमारा घर बन जाय क्योंकि वही हमारा वास्तविक अस्तित्व है। बड़े-बड़े तमगे हासिल करके कोई यह सोचे कि उसने बहुत कुछ पा लिया है तो यह स्वयं को धोखा देने के सिवाय कुछ भी नहीं होगा। मानव मात्र अपने शरीर में रहते हुए परमात्म-स्वरूप हो सकता है, भगवत्ता को उपलब्ध हो सकता है। “मैं” को विसर्जित कर भौतिक शरीर “अनन्त” की संभावना बन सकता है और इसके लिए उक्त ‘योग-संगीत’ सबसे सुलभ व द्रुतगामी पथ है।

स्वर - साधना

डा० भुवनेश्वर तिवारी

गायन के लिये स्वर-साधना अर्थात् Voice Culture का बहुत महत्त्व है, आवाज को अपने नियन्त्रण में रखने के लिए नियमित स्वर-साधना अत्यन्त आवश्यक है।

स्वर-साधना रियाज के नाम से भी जाना जाता है। प्रतिदिन ब्रह्ममूर्धर्त में उठकर शुचिता के साथ ऐसे स्थान पर तानपूरा लेकर बैठा जाय जहाँ शुद्ध वायु मिलती रहे। ऐसे स्थान में अपने मन को एकाग्र चित्त करके षड्ज का दीर्घ अभ्यास और क्रमशः मन्द के स्वरों में आवाज जहाँ तक आसानी से पहुँच सके, वहाँ जाकर स्वर को स्थिर करें, अर्थात् उसका दीर्घ अभ्यास करना चाहिए। अभ्यास में जल्दबाजी घातक हो सकती है, इसलिए स्वरों पर रुककर उसमें स्थैर्य लाना चाहिए। साधना एक तपस्या है, और तपस्या में सुख का त्याग करना पड़ता है। अपने को तपाना पड़ता है। स्वर-साधना स्वरों के प्रति एक आध्यात्मिक आराधना है, उनसे स्तुति करना है कि “ऐ स्वर देवता आप मुझे अपना आशीर्वाद दें मुझ पर प्रसन्न हों” इस भावना से अभ्यास करना उत्कट रूप से फलदायक होता है।

मंत्रों की सिद्धि के लिए जिस प्रकार निश्चित स्थान व समय पर अराधन-पूजन करना आवश्यक है, ठीक उसी प्रकार स्वर-साधना के लिए निश्चित स्थान, समय एवं नियम का पालन होना चाहिए। जैसे कभी प्रातः चार बजे अभ्यास के लिए निश्चित स्थान, समय एवं नियम का पालन होना चाहिए। जैसे कभी प्रातः चार बजे अभ्यास के लिए बैठा गया और कभी सात बजे, यह नियम-भंग होना

है, साधना के नियम के प्रतिकूल है, और इससे समुचित लाभ संभव नहीं है। इसलिए जो स्थान और समय निश्चित किया जाय, उसका पालन होना चाहिए। अगर ऐसा होगा तभी साधना सफल हो सकेगी।

प्रातः का समय मंद स्वरों के अभ्यास के लिए बहुत ही उपयुक्त होता है। पूरा वातावरण शान्त होने के कारण मंद स्वरों की जो गूँज वातावरण में होती है, गले के साथ-साथ पूरा शरीर इस गूँज से प्रभावित होता है। वातावरण में शान्ति होने के कारण हमें अपनी आवाज की सूक्ष्मता स्वयं को महसूस होती है जिससे कमियों का पता आसानी से चल जाता है, और उन्हें तत्काल सुधारा जा सकता है। प्रातःकाल के वातावरण में जीवनदायिनी वायु अर्थात्, ऑक्सीजन अधिक होती है, जो स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभदायक होती है। स्वर-साधना एक प्रकार की योग-साधना है, क्योंकि स्वरों पर श्वाँस रोकना होता है, अतः एक प्रकार से यौगिक साधन है यह, और इससे फेफड़े तथा कंठ को उपयुक्त आवाज के योग्य बनाया जा सकता है।

संध्या के समय मध्य सप्तक और तार सप्तक के स्वरों को विभिन्न काकु के अनुकूल बनाने के लिए अभ्यास करना चाहिए। निम्न स्पष्ट स्वरों का अभ्यास, विभिन्न अंलकारों का अभ्यास, विभिन्न लय में स्वरों को गाने का अभ्यास, आकार आदि में होना चाहिए। भावानुरूप स्वरोच्चार के लिए वाग्व्यवहार में उतार-चढ़ाव से लघु-गुरु और प्लुत उच्चार से आवश्यकतानुसार मृदुता अथवा आघात से

स्वरोच्चार करने से ही भावाभिव्यक्ति में प्रभाव पैदा किया जा सकता है। संगीत में स्वर प्राण स्वरूप है स्वर पर ही पूर्णरूपेण भाव सृष्टि की अभिव्यक्ति अवलम्बित है। संगीत में शब्द हो या न हो, उसका निगूढ़ अर्थ तो स्वर ही वहन करते हैं। स्वरों के विभिन्न संयोजन ही राग का रूप-भाव समझाने में सहायक होते हैं। इसलिए स्वरों की साधना बहुत आवश्यक है। स्वरों का माधुर्य समस्त वातावरण को रससिक्त करता है। स्वर के प्रभाव से मनुष्य ही नहीं बल्कि हिरण, सर्प, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे सभी आनन्दित हो उठते हैं। यह असर बिना साधना के संभव नहीं है। स्वरों के संवादात्मक सन्निवेश का निर्माण साधना से ही समझ में आता है। अतः स्वर-साधना के लिए अधिक से अधिक समय देना चाहिए। यह स्वर-साधना का ही असर था कि स्वामी हरिदास के स्वरों के प्रभाव से जमुना का जल-प्रवाह तक रुक जाता था।

लोकोक्ति के अनुसार तानसेन का कहना था कि 'मैं जब एक दिन अभ्यास छोड़ देता हूँ तो मुझे स्वयं को आभास हो जाता है, और दो दिन के छोड़ देने पर (महाबली)

अकबर बदशाह को मालूम हो जाता है, और तीन दिन का अभ्यास छोड़ देने पर सारे जग को मालूम हो जाता है। यह दृष्टान्त इस तथ्य की पुष्टि करता है कि संगीत के अभ्यास में नियमितता का कितना स्थान होता है।

मानव चाहे कितनी भी भाषाओं का प्रयोग करे किन्तु उनमें रोने की, गाने की, हँसने की और अभिनय की भाषा में वह वैभिन्न नहीं है। वस्तुतः संगीत की भाषा भी सम्पूर्ण विश्व की भाषा तीनों कालों में व्याप्त ब्रह्माण्ड की इस संगीत-भाषा का प्रयोग करते समय हमें उसका ऐसा अभिव्यंजन करना चाहिए जिससे मानव ही नहीं समस्त प्राणी, जड़, चेतन, उसका सुख प्राप्त कर सके। विज्ञान भी स्वरों के प्रभाव को स्वीकार कर चुका है। किन्तु संगीत का यह उद्देश्य तभी प्राप्त किया जा सकता है जब स्वरों में वह मनोवांछित प्रभाव उत्पन्न किया जाय और वह स्वर-साधना से ही संभव है। यही कारण है कि हमारे देश में ही नहीं पश्चिमी देशों में भी स्वर-साधना पर विशेष जोर दिया जाता है।

राग - रागांग के प्रसंग में रेखांकित करने योग्य तथा यह है कि अब तक इस पद्धति को बीसवीं सदी की देन कहा जाता रहा है जब कि यथार्थ यह है कि राग की मूल प्रकृति पर आधारित वैज्ञानिक तथा सर्वथा समीचीन रागरागांग - पद्धति का प्रतिपादन मध्यकाल में ही किया जा चुका है और इसके जन्मदाता संगीतराय अनुष्टुप चक्रवर्ती भावभट्ट रहे हैं। पं० भावभट्ट ने इस पद्धति का प्रतिपादन एवं विवेचन अपने दो विशिष्ट ग्रन्थों अनूप संगीत विलास तथा अनूप संगीत रत्नाकर में किया है। इसके अन्तर्गत उसने कान्हरा सहित 18 मुख्य रागों का ग्रहण करते हुए उनके अंगभूत 158 रागों का समावेश किया है। इस वर्गीकरण की गतिशीलता को स्वीकार करते हुए ग्रन्थकार ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि नये रागों के सृजन के बाद नये राग - रागांग के अतिरिक्त वर्ग भी बनाये जा सकते हैं।

— आदिनाथ उपाध्याय

The Tone Poet

Dr. Subhadra Chaudhary

A most luminous star on the horizon of Indian music, Pandit Omkarnath Thakur, acquired his corporeal form on 24th June, 1897 at the Jahāj Grām in Bhādarāṇa Tahsil (present District Cambay) of former Baroda State. Despite a poverty-stricken childhood, caused by family strifes, his life is a legend of miraculous acts and events exhibiting physical strength, valour, brilliance, self-confidence, self-respect, sense of discipline and duty, devotion towards parents, achievements in yoga-sādhana and his sādhana and siddhi in music. Since it is not possible to describe his multifarious talents, a brief account of only his accomplishment in music can be given here.

Panditji started his training in music under the great saint musician Late Pandit Vishnu Digambar Paluskar at the age of 13 years and completed it within a short period of 6 years. Although he had imbibed almost all the characteristics of his Guru's style, he, later enriched his style by incorporating characteristics from the styles of other musicians. In his music there was a perfect blending of the three basic components of music - 'sarva', 'laya', and 'pada'.

He was primarily a khyāl-singer but could perform Dhrupad and Thumri also with equal skill and proficiency. However the erotic nature of Thumri did not agree with his 'sāttvikaprakṛti' and therefore he did not like to perform it.

According to Sanskrit grammar the word 'Rāgā' means 'that which colours'. In Indian music melodies with particular characteristics are called Ragas because they colour the mind of the listener with their own colour just as a piece of cloth is coloured when dipped in a particular dye. Panditji was adept in being able to colour the minds of his audience with the emotional colour of Ragas like Todi, Jogi Nilambari, Gauri, Bhairavi, Bageshri, Malkaunsā etc. In a way this unique characteristic of Indian music reached at climax in him.

Pandit Omkarnath Thakur established a standard of correctness and purity of Ragas in Hindustani music. Just as minute change in a line may completely alter the figure or expression in a drawing, similarly, slight variations in the rendering of musical notes or changes in register, rhythm or intonation - 'kāku' - can alter the character of a Raga in Hindustani music. He had a very clear conception of this and had demonstrated it with perfect clarity. It is no exaggeration to say that he had a vision of the 'Svara-deha' (tonal body) and 'Bhāva-deha' (emotional body) of Hindustani Ragas. He could thus express through the Ragas various emotions like pathos, anger, delight etc., manliness and womanliness, changes in the nature of man and woman arising out of the difference in age and temperament and the states of union and separation, the various stages in the human life like infancy, adolescence, youth etc.,

the subtle and fine shades of emotions which succeed one another in the rendering of a particular Raga. All this he conveyed through the tonal medium without resorting to any help of words.

Abhinavagupta, the commentator of the 'Nāṭyaśāstra', while giving the lakṣaṇa of Svara states—

शब्दस्वभावां चित्तवृत्तिं मध्यस्थतारूपस्वास्थ्यावस्था-
परित्याजने नोपतापयन्तो हृद्यतातिशयवशात्
स्वतामाक्षिपन्तः स्वाभिधानं कुर्वन्तः स्वरा इत्युक्ताः ।¹

that 'svara' is that which releases the mind from its 'nirvikāra' state, melts it and due to its melodiousness imposes itself on the mind so intensely that the mind is completely absorbed in svara. Panditji had known the secret of this lakṣaṇa. The svaras used by him conveyed something which had to be experienced and which defied expression through words.

'Ālāpa', 'Ālapana' and 'Ālapti' are the core of Indian music and they express the total personality of a Raga. The primary meaning of all these words is 'to say'. In Indian music, particularly in Hindustani music, through Ālāpa, something is 'said' or 'expressed' which is nothing but emotion. Panditji, though elaborate Ālāpa of a Raga, used to carry the minds of his listeners to a level which is described, in Indian Philosophy and Rasaśāstra, as 'Tadrūpatā' (formal correspondence) and 'Tanmayatā' (complete identification).

Verbal expression is of two kinds¹: 1. that which is done through words and 2. that which is done only through svaras. Such musicians are rare who can express emotions through svaras without employing words. Panditji had full command over the latter and he could express

whatever and whenever he desired. A 'dhīra' and 'gambhīra' prince of twenty-five through Raga Darbari, a 'mugdhā nāyikā' of sixteen through Asavari, an 'uddhata' man through Hindola, a 'khaṇḍitā nāyikā' through Sohāni, a woman in separation waiting and preparing for union through Bageshri, a 'kāmatūr' woman with all her airs and graces through Khamaj, an infant moving on all fours, stepping forward and stopping, falling and getting up and sulking through Durga, a tired labourer returning home with slow pace 'at sun-set through Purvi, intolerable and intense feeling of separation through Todi, disappointment arising out of long separation through Jogi, loss of all hopes of union and the consequent feeling of 'nirveda' through Gauri, he could thus express all these situations and feelings through svaras with such accomplishment that while listening to the performance a visual image would be created in the mind of the listener. Due to this unique characteristic of his he gained a high position among musicians.

His voice comprised of almost all the qualities, described in Śāstra, such as 'madhuratā' (melodiousness), 'ślakṣṇatā' (continuity), 'loca' (flexibility combined with tenderness), 'anudhvani' (resonance), 'gambhīratā' (profundity), 'rañjakatā' (colouring), 'komalatā' (softness), 'ghanatā' (density and volume), 'tristhānavyāpti' (effortless moving in the three registers) etc., and he acquired miraculous control over breath through practice. In his youth he could sustain a single note for more than 2 minutes. The listeners in Europe had compared his voice to that of Caruso, the Italian singer, a voice which was considered never to be heard again. It is a fact that Panditji's audience consisted of laymen and musicians and even in his performances of classical music he captivated the hearts of all

1. N.S., A.B., ch. 28, p. 10-11

alike. The credit of much of it goes to his voice. Saṅgītaratnākara states :-

रागाभिव्यक्तिशक्तत्वमनभ्यासेऽपि यद्ध्वनेः ।

तच्छरीरमिति प्रोक्तं शरीरेण सहोद्भवात् ॥२॥

that the quality of voice due to which Raga is fully expressed even without practice, is born with 'Sārīra' (body) and hence it is called 'Sārīra' (inborn good voice). Panditji was blessed with 'Suśārīra' and through practice he made it, to quote the words of Saṅgītaratnākara, 'āyatta' (under one's control).

His style was a beautiful blending of the main characteristics of important gharānās of Khyāl-singing. His style contained correctness of notes, ālāpa, boltān, simple and curved tāns, gamakadār (tāns with forceful strokes of other notes on the main notes) and 'dānedār tans (tāns in which each note is very clear), clarity of notes even in tāns with intricate pattern and rhythm, variety of 'tihāyis' (a part of the composition or svara-phrase employed thrice), clear and correct pronunciation of words and a balance of the three qualities of sound, viz., pitch, intensity and timbre. He made his style more expressive and emotional by giving 'kāku' (intonation) its due place. The technical and emotional aspects of music were equally balanced in his style.

On the one hand he created the image of a Raga using just a few notes while on the other he, sometimes, elaborate a Rāga with Ālāpa for two hours or more with ever-changing svara-patterns and emotions and thereby making the audience completely absorbed in music. The climax of 'bhāva' and 'ānanda' could be experienced in his rendering of devotional songs which blended the classical and non-classical styles. The audience was swept away in the stream of devotion and music. Through his

2 S. R., 3, 82

imagination he enriched his Guru's style of rendering devotional songs. Even a single devotional song from among 'jogī mata jā', 'maiya mori main nahin mākhana khāyo', 're dina kaise kaṭi hain' 'chadariyā rāmanāma rasabhīnī', 'kanhaiyā nāva karo mori pāra' sung by him is sufficient to immortalize his music. On several occasions his songs brought tears of joy among thousands of his listeners.

Pandit Omkarnathji had developed a characteristic style of singing 'Vande Mātaram' in which notes employed by him gave life to each word and manifested the 'svarūpa' of the mother and created a unique atmosphere of patriotism. Reacting to his first performance of this song at the Calcutta session of the All India Congress Committee the public and the press expressed that had Bankimchandra been alive he would have 'lifted him on his shoulders'

Music is said to be a universal language. The universal character lies in its capacity to express bhāvas even without employing words and if words are there music becomes a medium of expressing emotions and their fine shades attached with the primary meaning of the words. Panditji proved the presence of this characteristic in Indian music. This was possible for him for he knew well what notes convey what bhāva. He had full command over notes. There were many occasions in India and abroad when he performed before the audience consisting of foreign composers, performers, musicians and other listeners. Though they did not understand the meaning of the words, their experience corresponded to the meaning of the text of the song and the emotions expressed by Panditji.

In the field of operas two experiments are monumental. One of them was the music composed for the selected pieces from the original text of the epic, 'Kāmāyanī' of

Jayashankara Prasad, the noted Hindi poet and writer. The other was a unique and even more difficult experiment than the previous one. For this, he took selected pieces from a prose drama- 'Kāmanā' by the same author and composed it in the form of an opera. Both these were staged by the students of the Music College in Banaras Hindu University. The litterateurs and literary critics, commenting on the first said that only after hearing this musical rendering they could fully experience the real meaning of 'Kāmāyanī'. The meanings and emotions which could not be expressed through the words were now made manifest by the music employed by Panditji and the acting inspired by that music. The delightful and thrilling experience of the 'trivenī-saṅgama' of 'svara' (music), 'śabda' (literature) and 'abhinaya' (acting) in these operas is remembered by the connoisseurs of music, literature and drama even today.

The compositions of Panditji in various forms such as khyāl, dhrupad, dhamār etc., under the pen-name of 'Pṛaṇavarang', prove him as a 'Vāggeyakāra' (poet composer) par excellence. The secret of his excellence as a composer lies in the fact that he possessed almost all the qualities of a Vāggeyakāra described in Indian musical treatises.

The experiments conducted by him on plants, animals and human beings to investigate and examine the psychological effect and the therapeutical value of Raga reveals the researcher in him. By employing the notes of Kafi he pacified an extremely fierce lion, newly brought in Lahore zoo. He not only succeeded in calming it but in the eyes of the animal showed signs of love and it tried to stroke him gently with its claws. By singing a specific form of Hindustani Bhairavi to plants in Sir Jagadischandra Basu's laboratory he succeeded

in making the plant look very cheerful and thereby helped it in its growth. By rendering the ālāpa of Puriya (employing Komata Dhaivata) in Mandra and Madhya registers, with two tambūrās tuned to Śuddha Gāndhāra and Śuddha Niṣāda respectively he successfully treated many patients suffering from insomnia and through Devagiri Bilavala and Gauda-Saranga cured those suffering from low blood pressure.

He was the first Indian musician to represent India at an International Music Conference. In 1933 he attended the Conference at Florence and impressed large audiences in Europe with his music. Through his concerts in India, Nepal, Afghanistan and Europe he earned name, fame and wealth but used to attribute the credit to his Guru.

In North India it was the time when music was considered to be an occupation of low kind, musicians were treated with contempt in the society and children belonging to respectable families were not allowed to take training in music. Panditji's Guru, Pt. Vishnu digambar Paluskar, had dedicated his life to this sacred cause of elevating musicians to a respectable position in the society. Panditji's life shows that he also dedicated himself to the same cause although his way of carrying out the work was of a different nature. Sometimes his firm and sharp attitude, self-respect and straightforward nature were taken to be failures and some even considered him to be an egoist. But it should be remembered that the strong attitude adopted by him on several occasions was not for personal reasons but for the cause for which his Guru and he himself had struggled.

He was conferred many titles and special honours in India and abroad by various institutions and persons but he considered the love, affection and appreciation showered on

him by his audiences as the greatest honour. He expressed his acceptance of this honour by infusing more life into his music. His performances were listened to with rapt attention, a feature very rare in Indian concerts.

As a good teacher his talents are well-known among his students and people closely connected with him. He was proficient in teaching intricate, difficult and fine musical phrases in such a simple manner that the students could learn them without much difficulty. He had evolved a new systematic and easy method of teaching which proved to be very successful. Music training has been imparted accordingly in the Music College started and run under his Principalship (now the Faculty of Performing Arts) of the Banaras Hindu University. This was the first Music College started in an Indian University which is a living monument of Panditji that has Produced good musicians, teachers and researchers.

The musicological sections of 'Sangitanjali', series prepared as text books for practical music, and 'Prajñava-bhārati' bear testimony to his musicological studies.

The writer of this article had the good fortune of being his student and getting training in vocal music from him for more than 5 years, of being closely associated with him, of receiving fatherly love and affection from him, of listening to many of his concerts and having direct experience of his musical accomplishments, of assisting him in many of his publications and of perceiving personally many rare qualities in him. Hence it will not be out of place to mention here the most luminous aspect of his music.

The highest aim of music is described as 'sādhana' of 'bhukti' (enjoyment) and 'mukti'

(liberation). The practical aspect of 'bhukti' is enjoyment of 'ānanda' and of 'mukti' is that of liberation from 'rāga-dveṣa'. Panditji had been in a state of 'bhukti' and 'mukti' during many of his performances in the sense that he experienced bliss and was free from pleasures and pains during those moments. He carried the minds of the audience to a level where the distinction between 'śva' and 'para' disappears, where the awareness of one's existence is completely lost, where the stage of complete 'tāṭasthya' (detachment) and 'tādātmya' (identification) is achieved, where the 'sāttvika-bhāvas' such as 'āśru' (tears), 'pulaka' (thrill), 'svara-bheda' (changes in voice due to emotions) etc. appear, where the worldly experiences of pleasure and pain disappear and perfect bliss pervades stage of
विगलितवेद्यान्तरशून्यता

- Courtsey of 'Sangeet Sanchayan'.

Sangeet Rai Anushtup Chakravarti Bhava Bhatt : An Extraordinary Personality in The Field of Music

Dr. Adi Nath Upadhyaya

(Translation- J. P. Singh Surmani)

Many great masters of Mediaeval age have left an indelible impression in the field of music and most of them are very well known to us but there are also some other genius masters of this age whom we do not know and we remain un-introduced with their extraordinary personality and marvelous achievement. Pandit Bhava Bhatt, a Profound scholar of music, a man of extraordinary personality, is one of these prominent figures.

Bhava Bhatt is generally recognised as a writer of his three partly published books namely, Anoop Sangeet Vilas, Anoop Sangeet Ratnakar and Anoop Sangeetankush, but the fact is that he has written eighteen Lakshya Lakshana Moolak Vishishta Granthas (Special books of Music) and such a large number of books written by a single writer is a landmark in the history of music till this age. In this context the titles and adjectives which have been awarded (added with his name) to Bhava Bhatt and which are also the symbol of his genius, are worth to be noticed. For example, Vaggeyakar (Master in the Composition of Dhatu & Matu) Sangeet Rai (Specialist of all the three branches of music namely vocal, Instrumental and dance), Anushtup Chakravarti (Master in the Composition of Sanskrit Poetry), Sakal Kalavant (Representative Vocalist as well as Composer of Dhruvpad), Vartman Pravartak (Founder of the

rules and regulations of his contemporary Lakshya Sangeet), Tan Yoga Pravartak (Founder of the Special function of tans in music) Brahmarshi (The Worshipped person in the form of a great man) ¹ Besides this credit also goes to Bhava Bhatt for being the founder of Kathak Nritya along with the other different forms of Indian Classical dances. ² Seeing all this, it seems that being a top class musicologist, Bhava Bhatt was also a top class 'Vaggeyakar', Agrani Kalavant' (Representative vocalist as well as Composer of Dhruvpad), Prakash Stambha (Like a pole-light for showing the way to other musicians of his time) and in real sense a leading & perfect music personality of his age. Many learned persons of post Bhava Bhatt period like Savai Pratap Singh Deo as well as some great thinkers of music of modern era like Pandit Bhat Khande and Acharya Brihaspati have also quoted the name of Bhava Bhatt in many important musical references and the sense in which they have mentioned his name also supports him for being a great genius person. It is very natural to have a keen desire to know such a talented man of extraordinary personality and great genius.

Place, Time and Short Introduction :

Bhava Bhatt came into existence in such a period when Mughal king Aurangzeb was ruling over the country. Aurangzeb always protested

music and never provided any kind of royal support to music during his regime. Although, it is undoubtedly true that his hatred for music was not of such a kind as it is generally presumed. It has also been proved on the basis of some new research works that he was a well versed vina player.³ Even then on the basis of a large number of evidences, it can be said that his attitude towards music was negative in all respects. Keeping in view the period of the reign of Aurangzeb i.e. 1658-1727 A.D. and the period of Bhava Bhatt i.e. 1668-1709 A.D. it can very easily be guessed that both of them were contemporaries of each other. In such an era when there was no royal support to music, the recognition of music as well as musician was impossible and somehow if it could be possible, it was a hard nut to crack. In such an atmosphere the situation which would have been prevalent at that time needs no comment. As it has truly, been said in Hindi "जिन खोजा तिन पाइयौ" "Jin Khoja Tin Paiyan...." Despite of all these anti-situations, Bhava Bhatt made the way clear for himself to work in the field of music and it was also a good chance for him that he got the royal support of Maharaja Anoop Singh of Bikaner state who was associated with Aurangzeb. Maharaja Anoop Singh, like his father Maharaja Karan Singh, was brave, religious and lover of art and education. Maharaja Anoop Singh became the supporter of the great musician Pandit Bhava Bhatt and also established a library of international repute named, 'Anoop Sanskrit Library'. The aforesaid facts show his great devotion and true love for art, culture and education.

The roll of hereditary effect of Bhava Bhatt

in the form of his musical background was not less strong. Pandit Tan Bhatt was his grandfather and it is said about him that he was famous in South India with the name of Tanappa (Chandrashekhar Tanappa) who was the Dadaguru (Father of teacher) of Pandit Bayankat Makhi.⁴ He was also a learned scholar of music. On the other hand his father, Pandit Janardan Bhatt was a prominent and honoured musicologist and musician as well, of the court of the Mughal king, Shaha Jahan.⁵

Although Pandit Bhava Bhatt, While introducing himself with the title of Swatma Bhava Prakash had told himself an inhabitant of Dhaulpur (Situated somewhere in Rajasthan), yet on the basis of the availability of the evidences, it can be said that he was originally a Tailang Bhatt Brahman of Andhra Pradesh and later on his family migrated to northern India.⁶ The great thinkers like Pandit Bhat Khande and Acharya Brihaspati have also mentioned that Bhava Bhatt belonged to South India.⁷

Name list of the books of Bhava Bhatt :

After a thorough check up of his books which are available at present and their records available in different libraries, the names of his eighteen Granthas, Which have come to our notice, are as under:-

1. Anoop Sangeet Vilas, 2. Anoop Sangeet Ratnakar, 3. Anoop Sangeet Ankush, 4. Anoop Sangeet Vartman, 5. Anoop Raga Sagar, 6. Kutapadhyaya, 7. Gamak Manjari, 8. Gamak Manjari Teeka, 9. Geet Govind Teeka, 10. Geet Lakshana, 11. Nashtoddisht Prabodhak Dhraupad Teeka, 12. Murli Prakash, 13. Raga

Mala, 14. Raga Vivek, 15. Swara Lakshana, 16. Sapta Khand Meru, 17. Sangeet Chandrika, 18. Sangeet Ratnakar Andhri Bhasha Teeka.

It is worth to be noticed that some of these Granthas of Bhava Bhatt are bigger than 'Sangeet Ratnakar' Written by Pandit Sharmg Deo. For example- 'Anoop Sangeet Vilas' and 'Anoop Sangeet Ratnakar' are just double of 'Sangeet Ratnakar' on the basis of the numbers of Shlokas written in these books.

Some records are also found regarding the name list of the books of Bhava Bhatt which are full of confusion. For example, one manuscript has been found with the name of 'Bhava Manjari' and at least in most of the records it has been presented as a full book of Bhava Bhatt but after a deep study of this ancient manuscript it has come to our notice that this manuscript, bearing the name of 'Bhava Manjari' is not the name of anyone of the Granthas of Bhava Bhatt but it is merely a chapter on dance of one of his books named, 'Anoop Sangeetankush' which is in Seven chapters and the transcribers have described this manuscript in the form of a book of Bhava Bhatt a confusing name 'Bhava Manjari'. It is worth to be mentioned here that with the removal of the confusion regarding the name of Bhava Manjari as Grantha of Bhava Bhatt, this confusion also remains no more that the chapter of dance of 'Anoop Sangeet ankush' is not available in Anoop Sanskrit Library.

Availability of the Granthas of Bhava Bhatt :

The published part of the books of Bhava Batt is too less and confusing to be counted as a published material. Thus, the availability of the

books of Bhava Bhatt is found originally in the form of ancient manuscripts. The main center of these manuscripts is Anoop Sanskrit Library of Bikaner State where most of the Granthas of Bhava Bhatt are found and it is also natural because this place has been the shelter of Bhava Bhatt. Besides this, few copies of these manuscripts are also found in Bharat Kala Bhavan, B.H.U./Varanasi, Raghunath Temple state library/Jammu & Kashmir, Savai Mansingh second musium/Jaipur and Rajkiya palace library/Tanjore.

Some Granthas of Special Characteristics :

In this connection, it is interesting to Point out that most of the Granthas of Bhava Bhatt, starting with the name of 'Anoop', are of special type of structure. For example, the Granthas like 'Anoop Sangeet Vilas' and 'Anoop Sangeetankush' have been written on the basis of the Structure of Saptadhyayee of Pandit Sharmg Deo. 'Anoop Sangeet Ratnakar' has been written in nine chapters. In this book besides the seven chapters of 'Sangeet Ratnakar' on 'Swara' (Musical notes) etc. two additional Chapters have also been added in the end of the book. The 8th chapter has been written on drama i.e. 'Natakadhyaya' and the 9th chapter has been written on 'Rasa' i.e. 'Rasadhyaya'. 'Anoop Raga Sagar' consists of twelve chapters. In the first eight chapters, there is a systematic description of the Ragas of eight times of a day and in the 9th chapter, there is a description of the Raga of 'Brahmand Puran'. Establishment of 'Swara' (Musical notes) on the wires of Vina has been given in the 10th chapter and 'Yagyan Namadhari' eighty four Ragas have been described

in the 11th chapter. There is description of special type of 41 Ragas, famous in 'Lakahya' in the 12th and the last chapter. In the same way, the Grantha (Anoop Sangeet Vartman' has been divided in six headings namely, 'Swara', 'Raga', 'Prakimaka', 'Vadya' 'Tala', and 'Nri-tya' (Dance). The writer has not given a place to the chapter of 'Prabandha' in this book which looks some what unexpected but keeping in view the name of the book, it looks to be fit and matching. It can be understood very easily if we put a glance over the word 'vartman' which has been added with the name of the book. the main aim of the Granthakar has been to describe the 'Lakshya Sangeet' of that time in this book. It Seems that the tradition of 'Prabandha' had come to an end in the period of Bhava Bhatt and as a result of which he would have left 'Prabandha' in this book which is centralised in 'Vartman'.

Style and language of books :

Bhava Bhatt has been originally a writer of Sanskrit Language. The use of Braj Hindi is seen only on a few places in his books and on such type of places, the examples of the compositions of Dhruvapad and definitions of some musical terms or the material for dealing with a new subject mainly come in picture. While dealing with new subject matters, the writer has made a proper use of Hindi language for making the subject familiar and this is the symbol of the sharpness of his mind. In fact, the use of a language other than Sanskrit for a writer of Sanskrit tradition is not something new because such type of use of language is also visible in many books of music like Bharata's 'Natya

shastra' which were written prior to him.

All the books of Bhava Bhatt have been written in the form of shloka and except some places, 'Anushtup chhanda' has been used every where in his books. The meters like 'Shardul Vikridita', 'Rathoddhata' or 'Sragdhara' have been used on a few places only.

The notable aspect of the style of Bhava Bhatt is that at the time of dealing with any subject, he always quotes the ancient writers both from south and north and he also pays them full respect and honour on suitable places but at the same time he does not hesitate to criticise their statements which are full of mistakes and confusion. For example, he has very clearly commented upon pandit Ahobal as he has presented an imperfect description of Raga 'Gurjari'. He says, 'इयं नोदाहृता कस्मादहोबलमहाशयैः ?' (Taken from Ragadhyaya of 'Anoop Sangeet Vilas', Published book, Page-124) Bhava Bhatt has offered this comment in connection with all the aspects of Raga 'Gurjari' which were examined by him. He has also clarified that this description of Raga 'Gurjari' of Ahobal is totally incomplete. In the same way his comments upon the imaginative materials given in the contemporary books of 'Rag Mala' are also worth to be seen. He writes 'राग माला भूरिशः स्युः कपोलकल्पिता किल, मूलं न दृश्यते तासां व्यभिचार प्रदर्तते' (Taken from Ragadhyaya of 'Anoop Sangeet Ratnakar', published book, Page-16), He has adopted the comparative style in the interpretation of different subjects and in the last he has given his own decision by saying 'स्वमते' Swamate' (in my own opinion), 'इयं

मदुक्ति' 'Iyam Madukti' (This is my statement) etc. and thus, he clarifies the matter by his own decision.

One of the special features of the style of interpretation of Bhava Bhatt is that he touches all the points coming under a subject and interpretes it as a whole. For example, while giving an interpretation of a particular Raga, he has clearly mentioned the 'Lakshana' (Symptom) of the Raga, examples of different kinds of Alapa, Dhyana, of that Raga, Important notes on the Raga and in the end he also gives some examples of the compositions of Dhruvpad relating to that Raga.

Subject matter of the books :

Regarding the subject matter of books, the ideas which have been expressed by the author before starting to write the Granthas, are worth to be noticed. To quote his own words.

कवीन्द्रान् पण्डितेन्द्रांश्च भूपेन्द्रांश्चतुरांजनान् ।
गायकान् वादकान् नर्तकांस्तानुपजीव्य च ॥

(Taken from swaradhyaya of 'Anoop Sangeet Vilas', published book, Page-10)

Keeping in view the quotation as mentioned above, it is fully clear that Bhava Bhatt has accepted music in the same way as has been defined by Sharng Deo "गीतं वाद्यं तथा नृत्तं त्रयं संगीतमुच्यते" "Geetam Vadyam Tatha Nrityam Tayam Sangeetamuchyate" in all its three respects i.e. vocal, instrumental and dance and according to that he has interpreted all the three branches of music (Vocal, Instrumental and Dance). The author has also clarified with the

medium of his Shloka that his books are full of the qualities of poetry and, therefore are also beneficial for poets. As a matter of fact, his aforesaid statement is according to the titles of 'Sangeet Rai', 'Anushtup Chakravarti' which have been awarded to him.

Some interesting and important places of his books :

It has been noticed by various survey that full material of the Granthas of Bhava Bhatt is useful from the musical point of view and perhaps on account of this, Pandit Bhat Khande had proposed that the study of all the books of Bhava Bhatt would be compulsory for a profound scholar of music.⁸ Due to the shortage of place in this magazine, it is not possible to mention here all such important and interesting places of his books therefore, some selected interesting places are: 1. Shruti (Microtone) -Observation regarding swara. 2. Observation of different systems of classification of Ragas alongwith 'Raga Raganga' system and other different scientific systems. 3. Observation of 'Kutap' and 'Vrinda'. 4. Two types of Lakshanas of Dhruvpad and examples of the compositions of Dhruvpad, 5. Some important notes on dance etc. All these subjects, which are important from musical point of view, are either totally new and have got a place in the books of Bhava Bhatt for the first time or they have been interpreted by him for the first time.

1. His statement regarding value of shruties (Microtones) is of greater importance. He says, 'The value of shruties is non-equal instead of being equal.'⁹ He has also proved this fact by the

establishment of shruties of the wires of Vina.¹⁰ The disclosure of this mystery by Bhava Bhatt regarding exact value of Shruti has a special importance in the field of music because the confusion which has been regarding value of shruties till this time is now removed by this fact.

Shrutisahkrit swara sthapana, establishment of microtoned musical notes on the wires of Vina is a new as well as minute experiment by the writer. Under this experiment, he has fixed the places of 22 Shruties in all the three saptakas and thereafter on the basis of placement of 22 shruties, he has established sa, re, ga, ma, pa, dha, ni, these seven musical notes upon them in all the three Saptakas.¹¹ In this connection it is worth to be mentioned that opinion of Bhava Bhatt regarding linear and Geometrical value of shruti and swara, as has been fixed by him, is much similar to that of pandit Omkar nath Thakur. On the basis of 'Shruti Sahakrit' experiment done by the writer, the important result which comes out is that our ancient arrangement of shruti and swara is always immortal and scientific. In this context this experiment of Bhava Bhatt will be proved very useful for us in understanding the principles of shruti and swara. It is worth to be noticed that such kind of experiment of 'Shruti sahakrit swara sthapana' (Establishment of musical notes along with the microtones) is not found in any other book of medieval age.

2. There can be two groups of the achievements of Bhava Bhatt regarding Classification of Ragas. (A) The self-interpreted subjects of the classification of Ragas of Bhava Bhatt can be put under this group. For example on the basis of 84

names of 'Yagyan' (classification of Ragas on the basis of the name of the Yagyan) and classifications of the Ragas of 'Raga Ragang' system. (B) Under this group, the writer has described various pre-established and popular system of the classification of Ragas like 'Raga Ragini' tradition, 'Mela' tradition and the tradition of the classification of Ragas based on Time period etc. He has also given an interpretation of the comparative study of the different systems of the classification of Ragas of his own and put them in a systematic manner.

One important thing, which is worth to be underlined in connection with the 'Raga Ragang', system, is that till this it has been agreed by all that this system of, 'Raga Ragang' is the achievement of 20th century whereas the fact is that on the basis of the original composition of the Ragas, the system of 'Raga Ragang' which is scientific and completely applicable in itself, had been originated in the medieval age and pandit Bhava Bhatt himself was the founder of this system. He has interpreted the aforesaid system in the chapters of Raga in 'Anoop Sangeet Vilas' and 'Anoop Sangeet Ratnakar' respectively.¹² Under these chapters, he has taken 18 main Ragas like 'Kanhara' etc., and described 158 Ragas of the same origin. Giving a hint towards the progressive nature of this classification of Raga, he has also clarified that an additional class of new 'Raga Ragang' may be made when new Ragas are introduced. Now the question arises as to how and when this system which had been given much importance even by Bhava Bhatt himself, disappeared after an interval of time? This is a topic which requires warm

discussion and as such will be considered separately. But after the examination of facts it can be undoubtedly said that a new invention of 'Raga Ragang' system had not been made in 20th century but it come again into existence as well as put into practice in 20th century after a long gap of time.

3. Bhava Bhatt has discussed 'Vrinda' (Orchestra) in detail. He has written a separate book on this particular subject named 'Kutapadhyaya' in which, starting from the 'Kutap' of 'Natyashastra' upto the 'Vrinda' of his own age, he has discussed the full development of 'Kutap' and 'Vrinda' and also their changing concepts from time to time in systematic way. This achievement of Bhava Bhatt will not only be helpful for us in understanding the history of 'Vrinda' but will also be helpful in enriching the practical portion of our 'Vrinda Vadan' (Orchestra).

4. References of 'Prabandha', 'Vastu', 'Roopak', 'Geet', 'Geya', 'Dhruvapat', 'Padya', 'Kriti', 'Tillane', 'Kavya', 'kavitta', 'Kavita', 'Giti', etc. are found in the books of Bhava Bhatt under the tradition of 'Prabandha'. It is known from a comparative study that it is a record number of the different varieties of Prabandha 'used by anyone writer of medieval age'.¹³ Despite of using different varieties of 'Prabandha' he has given special place to Dhruvapat in his books. We are well acquainted with the famous definition of dhruvapat of Bhava Bhatt i.e.

'गीर्वाण मध्यदेशीय भाषा साहित्यराजितम्

In fact, this is the definition of 'गेय ध्रुपद' 'Geya Dhruvapat' in words of Bhava Bhatt and it is known to all that this definition is more complete in itself than the other definitions which are found in the books of music. Definition of other writers are incomplete to be compared with the definition of Bhava Bhatt. Besides this, he has also defined 'Nritya Sahakrit Dhruvapat'. As a matter of fact, it has been a confusion till this time that the definition of 'Nritya Sahakrit Dhruvapat' i.e. 'गीयमाने ध्रुवपदे...' 'Giyamane Dhruvapat' or 'प्रायशोमध्यदेशीय भाषया...', 'Prayasho madhya Deshiya Bhashya' is of some other writer but it is now very clear from the survey of the original books that this definition is also the achievement of Bhava Bhatt.¹⁴

The second great contribution of Bhava Bhatt in connection with Dhruvapat is the vast collection of the compositions of Dhruvapat which are found in his books. Some of these composition of Dhruvapat presented in the form of examples along with the different ragas, have been composed by Bhava Bhatt himself and other compositions are found with the names of different composers of ancient age such as .. Gopal, Baiju, Tansen, Dhondhi, Janardan Bhatt, Jagannath Kavirai etc. This rich collection of near about 700 compositions of Dhruvapat is important from musical, poetrical and historical point of view.

5. References of 'Swara Nritya', 'Ashtapadi Nritya', Entrance of nartaki (Female dancer) in the 'Rangabhoomi', 'Panchanga Prayaoga Vidhi' etc. alongwith the special varieties of dance and drama are specially worth to be no-

ticed in the books of Bhava Bhatt. On One side he has observed the pre-established 'Swara Nritya' and 'Ashtopadi Nritya' in their changing phase and on the otherside, his treatment of 'Kataksha Bhada' is completely new in itself. He drawn a heart touching poetrical picture of the acting of the three kinds of 'Kataksha' i.e. 'Shweta Drishti', 'Shyama Drishti' and 'Shweta Shayama Drishti'. One example of 'Shwetu Drishti' as observed by him is given below in his own word and language.¹⁵

करे वेणी मेणी सदृशनयना स्नान विरतौ,
दधाना हर्म्यग्रि हरनयन तेजोहतमपि ।
इयं मुग्धाम्बुधि वहल कल्लोल सदृशा,
दृशा बारं-बारं मनसिजतरं पल्लव्यति ॥

It means, after taking the bath, catching the bunch of her hairs in her own hands, standing on the roof of her own residence, this winsom lady (heroin 'Naika') whose eyes are as beautiful as the eyes of a female deer, is again and again watering and growing with her vision the tree of Cupid (The Cupid has been described by the writer as a tree 'Kamataru') like the steady waves of the ocean of milk, who has been destroyed with the light of the third eye of God Shiva, situated on his forehead. In the same way the scholar has also presented a beautiful picture of the acting of the other two kinds of 'katadsha'.

Important Points Regarding His Personality and Achievements :

It becomes fully clear from the descriptions as mentioned above that Bhava Bhatt has viewed music as a whole. Keeping in view the popular definition of music of Sharng Deo, he has ac-

cepted all the three branches of music (Geet, Vadya and Nritya) as a whole. He has also given much importance to that part of music which is related with 'Swara', 'Tala', and 'Pada'. In other words we can say that on one side he has considered all the three branches of music (Vocal, instrumental and dance) as a whole and on the otherside he has also given much importance to that part of music which is related with 'Swara' . Tala' and Pada'. Sense of honour for the ancients and sense of responsibility for new is the speciality of his own. His attempt of relating ancients with modern and north with south is the symbol of musical prosperity and imotional integrity and therefore, is worth to be worshipped from these two points of view. Seeing his books like 'Anoop Sangeet vartman' and his title of 'Vartman Pravartak' (Added with his name), it seems that he has been fully conscious for matching practical and theoretical aspects with each other and at the same time like a vigilant Musical Personality of his own age, he has performed the important task of defining properly the various tradition of music and their terms.

Keeping in view his wider view of music and his achievement of writing 18 special books on music which are very interesting and full of important material of music, it has to be said in connection with the introduction of his personality and marvelous achievements that Bhava Bhatt is not merely an ordinary man but is an institution of music and Perhaps on account of these great achievements, the titles which have been awarded to him, have become a record in the field of music.

It was a short introduction of the personality and achievements of Bhava Bhatt. His full introduction can be made only after a thorough study of all of his works. We should never forget that like education, art and other subjects, the roots of our music have also been deeply attached with our rich ancient traditions. In this context, it would not be out of point to quote these lines of late Maha Devi Verma which were published in Hindi 'Dainik Jagaran' (Visheshank) of 23rd March, 1986. English version of her statement is given below:-

Today the people consider the traditions of past to be of old opinion and full of orthodox but perhaps they don't know that those who do not have a past, do not have a future too. The root of the tree is not visible but it bears the load of the tree as a whole. Down fall of the leaves, flowers, Fruits, all come upon the branches of tree but who is the base? Would it all be possible if the root does not take care of the tree, and thus, how will a man look the dream of future life who doesn't have a past .

References :

1. These titles bestowed upon Bhava Bhatt are found in his own text as well as visible in the text of Post-Bhava Bhatt's Period.
2. 'Sangeet' Monthly, August 1990, P. 32.
3. Medieval India, Prof. Satish Chandra, P. 207

4. Sangeet Chintamani, P. 257, 260 & 261
5. Pt. Bhat Khande's books (i) A comparative Study..... P. 89 and (ii) A Historical Survey..... P. 30.
6. Sangeet Chintamani, P. 257, 260 & 261
7. Ibid and A Short Historical Survey P. 31 & 32
8. Bhat Khande Smriti Grantha, P. 413 & 464
9. Published text Anup SangeetanKush Swaradhyaya P. 2
10. Anup Rag Sagar Ms. 3345, P. 125 at Anoop Sanskrit Library.
11. Ibid
12. Anup Sangeet Vilas, Ragadhyaya, the Published text, P. 105 and Anup Sangeet Ratnakara, the published text P. 18.
13. Bharatiya Sangeet Mer Tal Aur Roop Vidhan Dr. Subhadra Choudhary, P. 201, where too this fact has been accepted.
14. For clarification Refer - Dhrupad Annual, 1986 P. 78
15. Anup Sangeetankush Nrityadhyaya, Ms 7564 P. 120 at Sawai Man Singh Museum, Jaipur

गीताञ्जलि

शेषमणि निगम

दुनिया में कौन अपने और कौन हैं बेगाने ।
यह जानने को आतुर क्यों फिर रहें जमाने ॥

क्या होगा जानकर ये क्या लाभ होगा इससे,
पहिले स्वयं को जानो हर पल का साथ जिससे ।
आवागमन अकेले रिश्ते सभी बहाने ॥१॥

देगें जो तुम्हें अपने छीनेंगे जो पराये,
सब कुछ यहीं रहेगा कुछ भी न साथ जाये ।
फिर लालसा में भटके क्यों फिर रहे दिवाने ॥२॥

वैभव में नहीं शक्ति जीवन सुखी बनाये,
देता है स्वास्थ्य कोई न भोजन कोई खिलाये ।
है कौन वो नियन्ता मन सब से कहो पहिचाने ॥३॥

मिलती न माँगने से जब मौत भी यहाँ पर,
तब हँस के क्यों न सब जो कुछ भी दे वो रहवर ॥
हर हाल में खुश रहना ही जिन्दगी के माने ॥४॥

गर चाहते हो अच्छा सुख शान्ति भरा जीवन,
ध्यान धर लगा दो उस सर्व शक्ति पर सब ।
लगने लगेंगे दुनियावी ताने बाने ॥५॥

सुख स्रोत नाहेत जिसमें कहते हैं उसे ईश्वर,
उसका ही रूप सच्चा संगीत है शिव सुंदर ।
मन में वरण कर उसका कर जीने के बहाने ॥६॥

आराध्य बना उसको आराधना किया कर,
हर श्वास साधनारत चरणामृत लिया कर ।
कट जायेगी डगर “मणि” गाते हुये तराने ॥७॥

हमारे लेखक - रचनाकार (नादार्चन 1993)

— डॉ० अर्चना दीक्षित

एच 6, जोधपुर कालोनी

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी - 221005

— डॉ० आदिनाथ उपाध्याय

374 ए, डीरेका वाराणसी - 221004

— आशीष चटर्जी

केन्द्रीय विद्यालय, डीरेका, वाराणसी - 221004

— डॉ० कमल जैन

द्वारा श्री आर० के० जैन

मुख्य यांत्रिक अभियन्ता, दक्षिण रेलवे, मद्रास

— डॉ० जयचन्द्र शर्मा

निदेशक, श्री संगीत भारती

बीकानेर - 333001

— जय प्रकाश सिंह 'सुरमणि'

184 आइ, डी रे का, वाराणसी - 221004

— पं० बलवन्त राय बट्ट 'भावरंग'

रोहित नगर, वाराणसी - 221005

— डॉ० भुवनेश्वर तिवारी

संगीत एवं मंचकला संकाय,

का० हि० वि०, वाराणसी - 221005

— डॉ० राय आनन्द कृष्ण

सीता निवास, का० हि० वि०, वाराणसी - 221005

— विजय कृष्ण जोशी

वाराणसी।

— शेषमणि निगम,

डी० रे० का०, वाराणसी।

— डॉ० सुभद्रा चौधरी,

विभागाध्यक्षा संगीत शास्त्र विभाग,

संगीत एवं मंच कला संकाय,

का० हि० वि०, वाराणसी - 221005

‘नादार्चन-संगीत वार्षिकी’— 1991 की विषयवस्तु

1. आशीर्वाद एवं प्रेरणाएँ
2. प्राक्कथन
3. मौन साधना का एक मुखर स्वर : डीरेका के
बंगाली बाबा — श्री आलोक प्रियदर्शी
4. मानव-जीवन का परम इष्ट : नाद-साधना — श्री विजय कृष्ण जोशी
5. हमें देखना है कि..... — डॉ० प्रदीप कुमार दीक्षित ‘नेहरंग’
6. संगीत से आनन्द की अभिवृद्धि — श्री अखौरी नगेन्द्र नारायण सिन्हा ‘नन्दन जी’
7. सम्पूर्ण जीवन-दर्शन का प्रतीक हमारा शास्त्रीय संगीत — डॉ० ऋत्विक् सान्याल
8. भारतीय संगीत कला से पुरुषार्थों की प्राप्ति — डॉ० विमला मुसेलगाँवकर
9. संगीत के क्षेत्र में व्यक्तिवादी वर्चस्व की प्रवृत्ति :
एक घातक बिडम्बना — स्व० जयन्त कृष्णमूर्ति
10. संगीत में शब्द और स्वर का समन्वय — श्रीमती गिरिजा देवी
11. भारतीय संगीत में ‘घराना’ की अवधारणा — डॉ० आदिनाथ उपाध्याय
12. भारतीय शास्त्रीय संगीत में ताल का महत्व तथा
उसका गणितीय विश्लेषण — डॉ० केदारनाथ भौमिक
13. भारतीय संगीत में स्वर-प्रतिपादन : एक बिहंगम दृष्टि — डॉ० कृष्णनाथ ओझा
14. शास्त्रीय संगीत से सम्बद्ध कुछ शब्दावलियाँ
15. शिवकाली मन्दिर का शारदीय नवरात्र का सांगीतिक
कार्यक्रम
16. एक सुमन-शुभाशीष की याचना में — श्री शिव सेवक त्रिपाठी

‘नादार्चन-संगीत वार्षिकी’— 1992 की विषयवस्तु

1. शुभकामनाएँ		
2. सम्पादकीय		
3. नादार्चन - प्रवेशाङ्क - प्राक्कथन (1991)		
4. प्रयोगात्मक कलाएँ : प्रयोक्ता और प्रेक्षक का अन्तः सम्बन्ध	- डॉ० अनिल बिहारी व्यौहार	1 - 5
5. खयाल - गायन के प्रमुख घराने एवं उनका तात्विक विश्लेषण	- डॉ० आर० ह्री० कविमण्डन	6 - 10
6. ‘धातु’ संगीत में ‘इण्टरडिसिप्लिनरी’ अध्ययन का उदाहरण	- डॉ० सुभद्रा चौधरी	11 - 13
7. कलाकार का स्वरूप : संगीत के परिप्रेक्ष्य में	- स्व० जयन्त कृष्णमूर्ति	14 - 15
8. अकबर - जहाँगीर काल में भारतीय संगीत के कुछ मनोरंजक उल्लेख	- डॉ० राय आनन्द कृष्ण	16 - 19
9. जैन परिप्रेक्ष्य में संगीत	- डॉ० श्रीमती कमल जैन	20 - 21
10. ध्रुवपद पर प्राकृतिक तत्वों का प्रभाव	- डॉ० जयचन्द्र शर्मा	22 - 24
11. संगीत : मेरी दृष्टि में	- प्रो० रवीन्द्रनाथ ओझा	25 - 28
12. दास्ताने तवायफ़ : ठुमरी और दादरा की पर्याय ये संगीत - साधिकाएँ	- श्री गजेन्द्र नारायण सिंह	29 - 37
13. संगीतशास्त्र में विज्ञान	- डॉ० (कु०) प्रेमलता शर्मा	38
14. रंगों की पृष्ठभूमि : सांगीतिक सात स्वरों के रंग	- डॉ० आदिनाथ उपाध्याय	39 - 48
15. सांगीतिक समस्याएँ	- डॉ० प्रदीप कुमार दीक्षित	49 - 51
16. कला के क्षेत्र में रसानुभूति	- डॉ० विमला मुसलगाँवकर	52 - 54
17. काव्याञ्जलि	- श्री शिवसेवक त्रिपाठी	55

X

X

X

X

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ।

न स योगो न तत्कर्म, नाट्येऽस्मिन् यत्र दृश्यते ॥

— नाट्यशास्त्र

शास्त्रीय संगीत से सम्बद्ध कुछ शब्दावलियाँ

अताई	: संगीत के शास्त्रीय ज्ञान से शून्य।	कायदा	: ठेके पर आधारित विशिष्ट बोल-रचना।
अदा	: भावपूर्ण मुद्रा।	कुतप	: वाद्यवृन्द।
अनाहत नाद	: बिना आघात के जन्यनाद, साहित्य में 'अनहद' के रूप से भी प्रयुक्त।	खटका	: एक गमक - प्रकार।
अल्पत्व	: राग की अवतारणा में स्वरों का अल्प प्रयोग।	खयाल	: हमारे वर्तमान शास्त्रीय संगीत का प्रमुख रागदारी - प्रकार।
अवरोह	: स्वरों का अवरोहण अथवा नीचे जाने वाला क्रम।	गतभाव	: कथक नृत्य का एक अंग।
अष्टपदी	: जयदेव की कृति।	गमक	: स्वर का कम्पयुक्त प्रयोग।
अन्तरा	: गीत (वन्दिश) का दूसरा खण्ड।	गायिकी	: 'नायिकी' को अलंकृत करके गाना, इसे के विकास - क्रम में कलाकार की 'विशिष्ट शैली' का जन्म होता है।
अंश	: राग का प्रमुख स्वर।	ग्रह	: जाति एवं राग का आरम्भिक स्वर।
आदिताल	: दाक्षिणात्य त्रिपुट ताल का एक भेद, उत्तरीभारत के त्रिताल जैसा।	चतुरस्र	: ताल - जाति का मुख्य प्रकार।
आरोह	: स्वरों का ऊपर जाने वाला क्रम।	छायालग राग	: जिसपर अन्य राग की छाया हो।
आलाप	: धीमी गति से स्वर - विस्तार।	जवारी खोलना	: वाद्य की गूँज बढ़ाने की क्रिया करना।
आविर्भाव	: तिरोभाव के पश्चात राग का मूल स्वरूप स्पष्ट करना।	जाति	: 'राग' की पूर्ववर्ती विधा।
आश्रयराग	: जन्य राग, मेल राग।	ततकार	: नृत्य के बोल।
उत्तरांग	: सप्तक का उत्तरार्ध।	तिरोभाव	: राग का स्वरूप छिपाना, वैचित्र्य पैदा करने के लिए रागदारी में किया जाता है।
उद्गाता	: सामवेद का मुख्य गायक।	तौर्यत्रिक	: संगीत, गीत, वाद्य तथा नृत्य का समुच्चय।
उपज	: कल्पना-भूत स्वर या स्वर - समूह।	त्र्यस्र	: ताल - जाति का एक प्रकार।
कण	: स्वर का अल्प स्पर्श।	दशविध रागलक्षण	: ग्रह - अंश, तार - मन्द्र न्यास - अंपन्यास अल्पत्व - बहुत्व षाडव - औडव।
कलावंत	: ध्रुपद गायक (मध्यकालीन संज्ञा)।		
कृति	: कर्नाटक संगीत का एक प्रमुख गीत - प्रकार।		
कम्पन	: गमक का एक प्रकार।		
काकु-स्वर - प्रयोग	: प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से एक ही स्वर का भिन्न-भिन्न प्रकार से लगाव।		

नायिकी	: गुरु-परम्परा से सीखी हुई चीज को यथावत् प्रस्तुत करना।	लहरा	: आवर्तन तथा लयदर्शक गत।
नृत्त	: अभिनय रहित अंग-विक्षेप।	लक्ष्य	: प्रयोगगत।
नृत्य	: अभिनय सहित अंग-विक्षेप।	लक्षण	: शास्त्र-सिद्धान्तगत।
नृत्य की मुख्य शैलियाँ	: भरतनाट्यम्-तमिलनाडु, कथकली केरल प्रदेश का, कथक-उत्तर भारत का, इसे नटवरी नृत्य भी कहते हैं; मणिपुरी-मणिपुर क्षेत्र का।	विष्णुपद	: ध्रुवपद शैली में गाया जाने वाला एक गीत प्रकार जिसका मूल सम्बन्ध मंदिर-परंपरा से रहा है।
नृत्य (कथक)	:	षड्जपंचम भाव	: सा और प के बीच का संवाद-सम्बन्ध जिसमें तेरह (13) श्रुतियों का अन्तराल होता है।
के घराने	लखनऊ, जयपुर तथा बनारस।	षड्जमध्यम भाव	: सा और म के बीच का संवाद-सम्बन्ध जिसमें नौ (9) श्रुतियों का अन्तराल होता है।
पकड़	: राग-वाची स्वर-समूह।	सादरा	: ध्रुवपद शैली में गाया जाने वाला एक गीत-प्रकार
पद्मन्त	: बोलों को मुख से बोलने की क्रिया	साम	: गेय मन्त्र, इसी से सामवेद।
परन	: मृदंग या तबले पर बजाये जाने वाले बोल-समूह।	संकीर्ण राग	: अनेक रागों की छाया वाले राग; मिश्र पीलू, मिश्र खमाज आदि; इनका प्रयोग अधिकतर ठुमरियों में होता है।
पूर्वाङ्ग	: सप्तक का पूर्वार्ध	सप्तक	: सात स्वरों का समूह (सा से नि तक)।
बहुत्व	: रागदारी में स्वर-विशेष का बहुल प्रयोग।	स्थायी	: गीत (वन्दिश) का पहला खण्ड।
बाज	: वादन शैली।		
मसीतखानीगत	: विलंबित गत		
राजाखानीगत	: द्रुत लय की गत।		
लग्गी	: तबले के बोल-समूह का एक प्रकार।		
लड़ी	: बोलों-लगियों की शृंखला।		

परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी ये चार अवस्थाएँ शब्दों की हुआ करती हैं। सूक्ष्मातिसूक्ष्म ज्ञान ही परा वाक् है। उसी को वेद कहते हैं। इस वेद वाणी का ऋषिमुनियों को साक्षात्कार हुआ। इस कारण उसी वाणी को पश्यन्ती वाक् कहा जाने लगा। ज्ञानमय वेदों का यह ग्रन्थ राशि रूप शब्दमय आविष्कार है। वाणी का स्थूल स्वरूप मध्यमा वाक् कहलाती है। वेद वाणी के ये तीनों स्वरूप अत्यन्त गूढ़ हैं। चौथी वैखरी वाणी है जो सामान्य लोगों के द्वारा उच्चारण की जाती है।

साभार - डॉ० गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर

शिव - काली मन्दिर की सांस्कृतिक गतिविधियाँ

शारदीय नवरात्र का सांगीतिक कार्यक्रम

शिव - काली मन्दिर संगीत समिति के माध्यम से डीरेका में जो सांस्कृतिक नवचेतना जगी है और लोगों में शास्त्रीय संगीत के प्रति जो रुझान आयी है उसका बहुत बड़ा श्रेय अनन्त श्री पू० बंगाली बाबा को जाता है। ई० 1987 की शारदीय नवरात्र की अष्टमी को इसी मन्दिर पर जब सुर - ताल और आवाज के धनी इस क्षेत्र के एक लोकप्रिय गायक श्री विजय सिंह का गायन चल रहा था तभी बाबा को भीतर से कुछ प्रेरणा जगी और गायन समाप्त होते ही समीप में खड़े संगीत भक्त श्री कमला सिंह को यह आदेश दिया कि अब से इस तरह के कार्यक्रम प्रत्येक वर्ष होने चाहिए और तभी से श्री लक्ष्मी महाराज की अध्यक्षता में प्रत्येक शारदीय नवरात्र में शास्त्रीय संगीत का यह द्विदिवसीय कार्यक्रम निरन्तर सफलतापूर्वक होता चला आ रहा है।

1988 के कार्यक्रम

गायन - श्री अखौरी नगेन्द्र नारायण सिन्हा 'नन्दन जी'

सितार - सुश्री तृप्ति बनर्जी

गायन - सुश्री दीप्ति बनर्जी

नृत्य - श्री रवि शंकर मिश्र तथा श्री सामता मिश्र

स्वतन्त्र तबला वादन - श्री लक्ष्मी महाराज

1989 के कार्यक्रम

गायन - श्री अजीत भट्टाचार्य

सितार - सुश्री तृप्ति बनर्जी

गायन - श्री बादल महाराज

वायलिन - श्री रामू प्रसाद शास्त्री

गायन - श्री छन्नू लाल मिश्र

कथकनृत्य - सुश्री उर्मिला शर्मा

तबला संगतकार - पं० लक्ष्मी महाराज, श्री सत्यनारायण सिंह

हारमोनियम - श्री परशुराम पाण्डेय, श्री विनोद लैले

सारंगी - श्री गणेशजी

1990 के कार्यक्रम

शहनाई - नैयर खाँ (सुपुत्र विस्मिल्लाह खाँ)

गायन - पं० छन्नूलाल मिश्र

वायलिन - श्री रामू प्रसाद शास्त्री

कथक नृत्य - श्री रविशंकर मिश्र, श्री सामता मिश्र

गायन - श्री प्रदीप कुमार, श्री सत्यनारायण सिंह

सितार - सुश्री रक्तिमा सरकार

कथक नृत्य - सुश्री सोनाली मुखर्जी

स्वतन्त्र तबला वादन - पं० लक्ष्म महाराज

तबला संगतकार - पं० ईश्वरलाल मिश्र, श्री कुबेर मिश्र, श्री किशोर मिश्र

हारमोनियम - श्री ध्रुवजी

सारंगी - श्री गणेशजी, श्री सन्तोषजी

1991 के कार्यक्रम

शहनाई - श्री रमाशंकर एवं साथी

सितार - डॉ० रक्तिमा सरकार

गायन - डॉ० ऋचा जौहरी

युगलबंदी - डॉ० रामू शास्त्री (वायलिन) एवं श्री अमरनाथ मिश्र (सितार)

युगल कथक नृत्य - श्री माताप्रसाद एवं श्री रविशंकर

वृंद वादन - मैहर वाद्य वृंद (संस्थापक - अलाउद्दीन खाँ)

गायन - श्रीमती मंगला तिवारी

सरोद - श्री विश्वजीत राय चौधरी

तबला संगतकार - श्री लक्ष्म महाराज, श्री ईश्वर लाल मिश्र, श्री कुमार लाल मिश्र, श्री रघुनाथ जी, श्री किशोर लाल मिश्र, श्री विनोद लेले

हारमोनियम - श्री ध्रुवजी

सारंगी - श्री बच्चालाल मिश्र, श्री सन्तोष मिश्र

'नादार्चन' संगीत वार्षिकी का लोकार्पण - द्वारा डॉ० विद्यानिवास मिश्र

1992 के कार्यक्रम

सितार वादन - डॉ० रक्तिमा सरकार

तबला वादन - श्री धनंजय मिश्र

युगल गायन - श्री अमरनाथ मिश्र एवं श्री पशुपतिनाथ मिश्र

युगल वादन - श्री अमरनाथ मिश्र (सितार) एवं श्री रमाशंकर (शहनाई)

सितार वादन - श्री कृष्ण कुमार मुखर्जी

गायन - श्री देवाशीषा डे

कथक नृत्य - श्री मधुकर आनंद

सरोद वादन - श्री जयदीप घोष

तबला संगतकार - श्री लक्ष्म महाराज, श्री पुण्डरीक कृष्ण भागवत, श्री ईश्वर लाल मिश्र, श्री जे० मैस्सी, श्री विनोद लैले, श्री कुमार लाल मिश्र

हारमोनियम - श्री

सारंगी - श्री

'नादार्चन' संगीत वार्षिकी का लोकार्पण - द्वारा डॉ० प्रेमलता शर्मा

कलाओं के माध्यम से होने वाली सौन्दर्यानुभूति क्या है, इस विषय में आचार्यों के विविध मत उपलब्ध होते हैं। आचार्य महिम भट्ट ने उसे वस्तु के ही विशिष्ट स्वरूप की अनुभूति बताया है। उनकी मान्यता है कि प्रत्येक बाह्य वस्तु का स्वरूप दो प्रकार का होता है। एक वह जो सर्वसामान्य को दृष्टिगोचर है तथा उसके दूसरे स्वरूप का साक्षात्कार कलाकार को तब होता है जब वह विशेष प्रकार की कलात्मक मनःस्थिति में होता है। उस समय अपनी मनःस्थिति के अनुरूप अभिव्यक्ति का माध्यम अपनाने की खोज में उसका चित्त एक क्षण के लिए एकाग्र हो जाता है और उसी क्षण उसकी बुद्धि में वस्तु के विशिष्ट स्वरूप का आभास हो जाता है। उसे ही कलाकार कलात्मक प्रज्ञा कहते हैं जिससे वह तीनों लोंकों के किसी भी विषय या वस्तु का साक्षात्कार कर लेता है। कलाकार की वह प्रज्ञा शिव के तृतीय नेत्र के समान होती है।

— प्रो० ब्रज मोहन चतुर्वेदी

दिनांक 22 व 23 अक्टूबर 1993

डीरेका के इस प्रांगण में इस वर्ष भी द्विदिवसीय शास्त्रीय संगीत समारोह सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर 'नादार्चन' संगीत वार्षिकी (डॉ० आदिनाथ उपाध्याय द्वारा सम्पादित) का लोकार्पण एवं काशी के वयोवृद्ध संगीत सेवियों पं० महादेव प्रसाद मिश्र, पं० हनुमान प्रसाद मिश्र एवं पं० बलवन्त राय भट्ट "भावराग" का अभिनन्दन किया गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि के रूप में तबला सम्राट विद्वान किशन महाराज ने तथा अध्यक्ष के रूप में डीरेका के मुख्य कार्मिक अधिकारी श्री राजेन्द्र कुमार जैन ने मंच को सुशोभित किया।

संगीत की प्रथम निशा का शुभारंभ डॉ० कमल जैन ने दीप प्रज्वलित कर के किया। कार्यक्रम की पहली प्रस्तुति श्री रमाशंकर का शहनाई वादन था। तबले पर संगत श्री कैलाश निषाद ने की। आपने शहनाई पर राग कलाश्री एवं तदुपरान्त एक बनारसी धुन की रोचक प्रस्तुति की। डॉ० रक्तिमा सरकार ने सितार पर राग मारू बिहाग एवं पीलू की अवतारण की। तबले पर श्री पुंडरीक कृष्ण भागवत ने संगत की। तीसरी कड़ी के रूप में मंच पर पधारी सुविख्यात गायिका श्रीमती मंजू सुन्दरम् की गायन-प्रस्तुति अत्यन्त प्रभावशाली रही। आपने राग शंकरा में बड़ा एवं छोटा खयाल तथा राग खमाज में दुमरी एवं अन्त में एक भजन प्रस्तुत किया। तबले पर संगत श्री विनोद लैले ने की। कु० अनुपमा सेठ व कु० रत्ना गुप्ता ने युगल नृत्य के द्वारा कथक का उत्कृष्ट नमूना प्रस्तुत किया। आप के साथ गुरु पं० बच्चा महाराज ने पद्मन्त व निर्देशन के द्वारा अद्भुत दक्षता का प्रदर्शन किया। अन्त में पं० अमर नाथ मिश्र ने सितार पर राग भटियार एवं धुन प्रस्तुत की। तबले पर श्री छोटे लाल मिश्र ने सफल संगत की।

द्वितीय निशा का शुभारंभ मुख्य अतिथि पं० किशन महाराज ने दीप प्रज्वलित कर के किया। तत्पश्चात डीरेका-परिवार की ओर से श्री राजेन्द्र कुमार जैन ने अध्यक्ष-पद से अपने संक्षिप्त वक्तव्य में विशिष्ट अतिथियों का भावविह्वल स्वागत किया। आपने संगीत को एकता के सूत्र में बाँधने का एक सबल माध्यम बताया और इसके आयोजकों को धन्यवाद दिया। मुख्य अतिथि पद से बोलते हुए पं० किशन महाराज ने शास्त्रीय संगीत समारोह, नादार्चन पत्रिका के प्रकाशन तथा इसी मंच पर वयोवृद्ध संगीत सेवियों के अभिनन्दन समारोह की परम्परा को एक उदात्त एवं अनुकरणीय उपलब्धि कहा और इस कार्यक्रम के उज्ज्वल भविष्य की कामना की। अभिनन्दित संगीत सेवी पं० बलवन्त राय भट्ट ने अपने आशीर्वचन में शिव काली मन्दिर की महिमा का महत्व बताते हुए यहाँ हो रहे सम्पूर्ण आयोजन की प्रशंसा की तथा अनवरत चलते रहने की कामना व्यक्त की। पं० हनुमान प्रसाद मिश्र ने अपना आशीर्वचन सारंगी वादन की प्रस्तुति के रूप में दिया। मिश्र जी ने 82 वर्ष की उम्र में भी जिस सारंगी-वादन की तैयारी व प्रभाव का परिचय दिया वह सर्वथा अनूठा था। आपके साथ तबले पर श्री ईश्वर लाल मिश्र ने बेजोड़ संगत की।

इस निशा की संगीत-प्रस्तुति में डॉ० प्रदीप कुमार दीक्षित एवं डॉ० अर्चना दीक्षित का गायन श्रोताओं पर एक अविस्मरणीय छाप छोड़ गया। युगल स्वरों में आप लोगों ने राग मालकोष में बड़ा खयाल, छोटा खयाल एवं तराना प्रस्तुत किया और एकल स्वरों में देवी-स्तुति तथा भगन। तबले पर श्री विनोद लैले ने संगत की। तदुपरान्त इलाहाबाद से पधारी सुश्री उर्मिला शर्मा ने कथक-नृत्य प्रस्तुत किया। आपकी प्रस्तुति हर दृष्टि से पूर्ण एवं

प्रभावशाली थी जो दर्शकों को अन्त तक बाँधे रखी। तबले पर श्री पूरन मिश्र एवं पखावज पर श्री रवि उपाध्याय ने नृत्य के साथ संगत का उत्कृष्ट परिचय दिया। अन्तिम कार्यक्रम के रूप में श्री राजेश शाह का सितार वादन था जिस पर उन्होंने राग बागेश्री की अवतारणा की। श्री अशोक पाण्डेय ने तबले पर सशक्त संगत की।

कार्यक्रम के अन्त में संस्था के संरक्षक श्री प्रताप श्रीवास्तव ने धन्यवाद ज्ञापन किया। डॉ० आदिनाथ उपाध्याय ने कार्यक्रम का संचालन किया। सर्वश्री शिवेन्द्र सिंह, कमला सिंह, ध्रुव कुमार मालवीय, समीर कुमार मजूमदार तथा करुणाकर ठाकुर ने मंच-व्यवस्था तथा चेतन उपाध्याय ने जन-सम्पर्क एवं प्रचार का दायित्व सम्हाला।

अनन्त श्री पू० बंगाली बाबा की पुण्य स्मृति

अनन्त श्री पू० बंगाली बाबा की पुण्य स्मृति में इस वर्ष माघ शुक्लपक्ष द्वादशी, दि० 4 फरवरी 1993 को शिव-काली मन्दिर समिति के तत्वावधान में मन्दिर के प्राङ्गण में भक्ति-भोज का आयोजन किया गया। इस अवसर पर डी० रे० का० परिसर के अलावा काशी तथा बाहर से आये श्रद्धालुजनों ने पारम्परिक विधि-विधान के साथ प्रसाद ग्रहण किया। भक्तजनों द्वारा दुर्गा-पाठ के साथ-साथ भजन-कीर्तन तथा रामायण का कार्यक्रम भी प्रस्तुत किया गया।

उल्लेखनीय है कि शिव काली मन्दिर की उपलब्धियों को देश की अग्रणी पत्र-पत्रिकाओं जैसे 'संगीत' तथा स्थानीय समाचार पत्रों जैसे 'दैनिक जागरण', 'आज', 'राष्ट्रीय सहारा', 'स्वतन्त्र भारत' आदि ने भी समय-समय पर प्रकाशित किया और सांस्कृतिक चेतना के नव-जारण में अपने अमूल्य योगदान का उदाहरण प्रस्तुत किया।

वर्ष 1992



दीप प्रज्वलित करते हुए डीरेका महाप्रबंधक श्री प्रमोद कुमार



नादार्चन संगीत वार्षिकी 1992 का लोकार्पण करती हुई मुख्य अतिथि डॉ० (कु०) प्रेमलता शर्मा मुख्य अतिथि, बाँयी ओर महाप्रबंधक श्री प्रमोद कुमार, दाहिनी ओर डॉ० कमलेश दत्त त्रिपाठी एवं श्रद्धानत डॉ० आदिनाथ उपाध्याय (सम्पादक, नादार्चन)



नादार्चन 1992 लोकार्पण का एक अविस्मरणीय दृश्य।
बाँये से - डॉ. कमलेश दत्त त्रिपाठी, डॉ. (कु०) प्रेमलता शर्मा, सुश्री गिरिजा देवी, श्री प्रमोद कुमार (महाप्रबंधक),
श्री एस. सी. दास (मुख्य यान्त्रिक अभियन्ता) एवं श्री प्रताप श्रीवास्तव (मुख्य रूपांकन अभियन्ता एवं संस्था के संरक्षक)।



गायन प्रस्तुत करते हुए श्री अमरनाथ मिश्र, श्री पशुपति नाथ मिश्र, तबले पर संगत
श्री ईश्वरलाल मिश्र और सारंगी पर श्री भगवान दासजी



नृत्य की एक मनोहारी मुद्रा में श्री मधुकर आनन्द

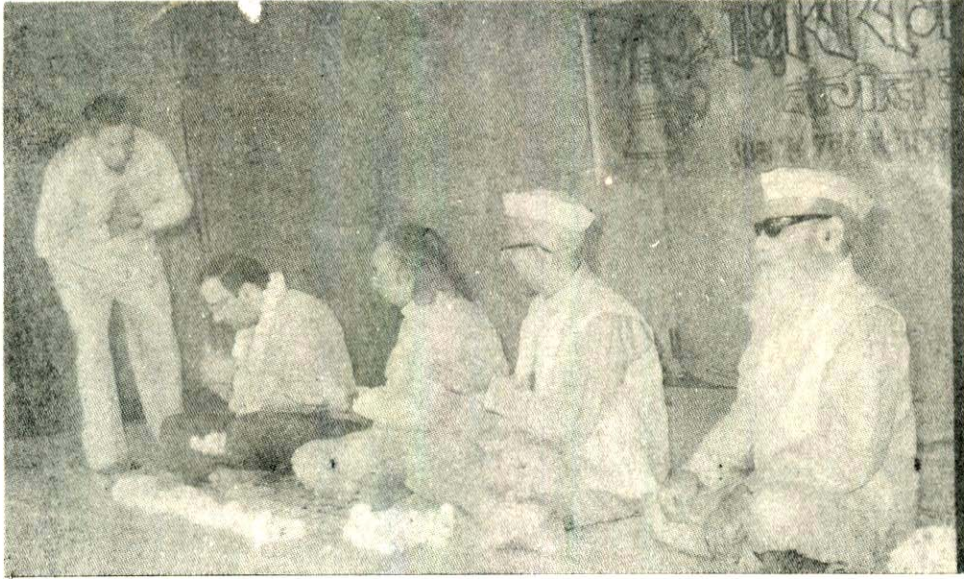
वर्ष 1993



संगीत की प्रथम निशा का शुभारंभ - दीप प्रज्वलित करती हुई डॉ. कमल जैन



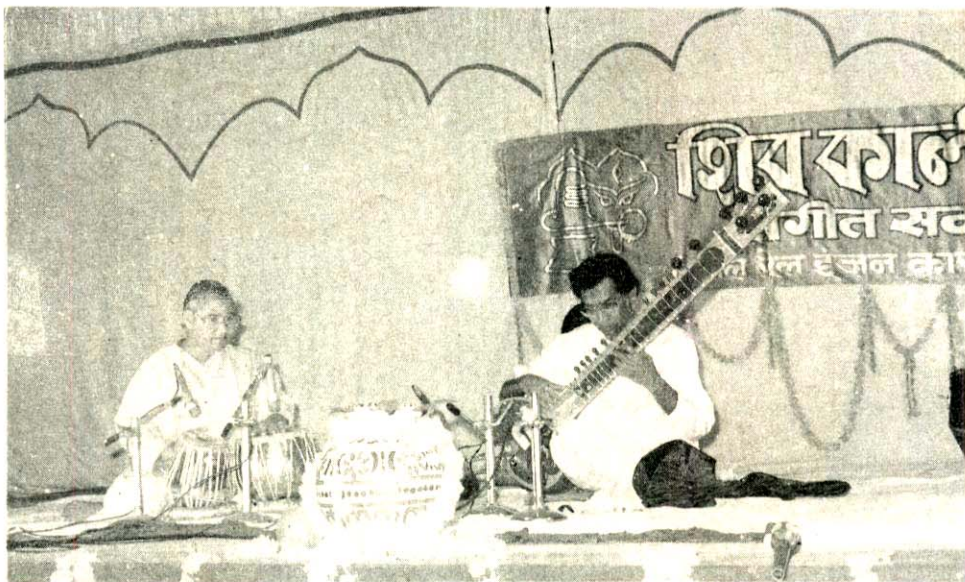
संगीत की द्वितीय निशा का शुभारंभ, दीप प्रज्वलित करते हुए मुख्य अतिथि पं. किशन महाराज



अतिथियों का पुष्प माला से स्वागत करते हुए संस्था के वरिष्ठ सदस्य श्री शिवेन्द्र प्रताप सिंह, मंच पर सुशोभित हैं पं. बलवन्त राय भट्ट, पं. हनुमान प्रसाद मिश्र, पं. किशनमहाराज एवं शिवकाली मन्दिर संगीत-समिति के संरक्षक श्री प्रताप श्रीवास्तव



'नादार्चन संगीतवार्षिकी 1993' का लोकार्पण करते हुए पं. किशन महाराज तथा उनके समीप में दाहिने नादार्चन के सम्पादक डॉ. आदिनाथ उपाध्याय एवं संस्था के संरक्षक श्री प्रताप श्रीवास्तव तथा विशिष्ट अतिथि पं. हनुमान प्रसाद मिश्र एवं पं. बलवन्त राय भट्ट



सितार - वादन प्रस्तुत करते हुए पं. अमरनाथ मिश्र तथा तबले पर संगत करते हुए पं. छोटेलाल मिश्र



- गायन प्रस्तुत करती हुई -
श्रीमती मंजू सुन्दरम्,
सारंगी पर संगत करते
हुए श्री बच्चालाल मिश्र



सितर वादन प्रस्तुत करती हुई डॉ० रक्तिमा सरकार, तबले पर संगत करते हुए श्री पुंडरीक कृष्ण भागवत



युगल गायन प्रस्तुत करते हुए - डॉ० प्रदीप कुमार दीक्षित एवं डॉ० अर्चना दीक्षित। तबले पर श्री विनोद लैले, हारमोनियम पर श्री राहुल भट्ट तथा सारंगी पर साथ दे रहे हैं श्री बच्चा लाल मिश्र



सितार वादन प्रस्तुत करते हुए श्री राजेश शाह तथा तबले पर संगत करते हुए श्री अशोक पाण्डेय ।



युगलनृत्य प्रस्तुत करती हुई कु० अनुपमा सेठ एवं कु० रत्ना गुप्ता



नृत्य की एक भावपूर्ण मुद्रा में, नृत्यांगना सुश्री उर्मिला शर्मा

डीरेका को जिस पर गर्व है



वायलिन वादक श्री जयप्रकाश सिंह जिन्हें इसी वर्ष सुरसिंगार संसद (बम्बई) का 'सुरमणि' सम्मान प्रदान किया गया। चित्र में श्री सिंह का अभिनन्दन करते हुए विद्वान् श्री पी० एन० शिवसागर तथा मध्य में विराजमान हैं सुविख्यात नृत्यांगना सुश्री सितारा देवी

शिव-काली मन्दिर संगीत समिति अभिनन्दन समारोह - 1993

जिनका सम्मान करके हम गौरवान्वित हैं
हमारे आदरणीय वयोवृद्ध संगीत सेवी

पं. महादेव मिश्र
पं. हनुमान प्रसाद मिश्र
पं. बलवन्त राय भट्ट

पं. महादेव मिश्र जी

के कर कमलों में

हे बनारस घराने के वास्तविक प्रतिनिधि !

परम माननीय तबले के आचार्य पं. भैरव सहायजी के सुयोग्य शिष्य; वाराणसी के कलागुरु, गान-गौरव, परम आदरणीय पं. बड़े रामदासजी के कृपा भाजन; आपने बनारस घराने की तबला तथा गायन परम्परा को आगे बढ़ाते हुए समुज्ज्वल किया है। आपकी गानशैली और संगीत-सेवा को बनारस सदा याद रखेगा।

हे चौमुखे गायक शिरोमणि !

गायन की ध्रुवपद-धमार, खयाल, ठुमरी-टप्पा अथवा कजरी-चैती सहज लोकशैली में से किसी भी विद्या को विद्वान् गुणीजन तथा सर्व सामान्य रसिक श्रोताओं के समक्ष सफलतापूर्वक, सरस ढंग से प्रस्तुत करने का सामर्थ्य रखनेवाले आप धन्य हैं। धन्य है आपकी साधना-धन्य है आपकी सिद्धि।

हे अनुपम-अनोखे आचार्य !

सुयोग्य भ्रातृज पं. अमरनाथ पं. पशुपतिनाथ (मिश्र बन्धु) तथा वाराणसी और आसपास के अनेकानेक छात्र-छात्राओं को विद्यादान प्रदान करने वाले महानुभाव आपने दो वर्षों तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत संकाय के छात्र-छात्राओं को पूर्वी अंग की ठुमरी की विधिवत् शिक्षा भी प्रदान की है।

हे 'गीता' के कर्मयोग को तादृश्य करनेवाले !

“कर्मण्येवाधिकारस्ते मां फलेषु कदाचन। कर्मा कर्म फलहेतुर्भू मां ते संगोऽस्त्व कर्मणि॥” जीवन में बहुत देर से मिले यश-प्रतिष्ठा-सम्मान से विचलित हुए बिना अध्ययन-अध्यापन के कर्तव्य पथ पर सदा आगे बढ़ते रहने वाले आपके धैर्य की हम प्रशंसा करते हैं-आपकी निष्ठा की सराहना करते हैं।

हे सहज-सरल, निस्पृह नरोत्तम !

गायन में सहज भाव से 'शब्द' - 'स्वर' - 'लय' का आनन्द देते हुए 'सम' पर आते हैं; उसी प्रकार अपनी स्वभावगत सरलता से परिचय-परिधि में आनेवाले प्रत्येक को प्रभावित तथा प्रमुदित करनेवाले आप अकिंचन भी हैं-समृद्ध भी। निस्पृह भी हैं-समर्थ भी। सामान्य भी हैं-नरोत्तम भी।

भगवान् भूतभावन से सविनय प्रार्थना है कि काशी के इस गौरव को निरामय, दीर्घ, संगीत सभर आयुष्य प्रदान करें। गाते रहें-गवाते रहें-सुनाते रहें।

शनिवार 23 अक्टूबर, 1993

विनयावनत

शिव काली मन्दिर संगीत समिति

डी.रे.का., वाराणसी

पं. हनुमान प्रसाद मिश्र जी

के कर कमलों में

हे स्वस्थ परम्परा के रक्षक !

बनारस घराने में गायन, तबला, शहनाई, नृत्य के उपरान्त सारंगी वादन की भी सुदीर्घ स्वस्थ परम्परा रही है। 'सारंगी सम्राट' स्वनामधन्य पं. सूर सहायजी के वंश में जन्म पा कर आपने 'सारंगी' की साधना तो की ही, साथ ही वाराणसी के मूर्धन्य गायक पं. बड़े रामदासजी से आपने गायन की भी विधिवत् शिक्षा ग्रहण की।

हे क्रिया-कुशल कलाकार !

स्वतंत्र सारंगी-वादन का कार्यक्रम हो या देश के किसी भी गण-मान्य गायक अथवा गायिका के साथ सारंगी-संगत का अवसर हो अथवा 'टप्पा' सम्मेलन जैसे आयोजन में 'टप्पा' या 'टप्पखाल' सदृश्य दुर्लभ रचना सुनाने का प्रसंग हो, आपने सुधि श्रोताओं को श्रवण-सुख तथा रसिकों को रसदान दिया है।

हे आजीवन सेवा-व्रत धारी !

आयुष्य के आठ दशक पूरे हो जाने पर भी आप सक्रिय हैं। 1951 से आकाशवाणी से आप जुड़े रहे। अनेकों को सारंगी की शिक्षा दी, अनेकों को गायन की सूक्ष्मताओं से अवगत कराया। खूब सुना-खूब सुनाया, खूब सीखा-खूब सिखाया। आज भी श्री कन्हैयालाल मिश्र तथा श्री प्रभु मिश्र विद्या-प्रसाद पा रहे हैं।

हे परम्परा के पोषक !

सुयोग्य भ्राता पं. गोपालजी मिश्र को आपने विश्व-विख्यात सारंगी वादक के रूप में प्रतिस्थापित किया और साथ ही अपने दोनों सुयोग्य पुत्रों, पं. राजन मिश्र एवम् पं. साजन मिश्र को गुणिजन मान्य तथा लोकप्रिय गायक-द्वय के रूप में मान्यता दिलाने का श्रेय आपकी शिक्षा-दीक्षा को ही जाता है।

हे सम्मानित, सदा स्मितधारी !

प्रदेश तथा केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी द्वारा सम्मानित आपने बनारस का गौरव बढ़ाया है। आपके सहज-सरल स्वाभाव तथा सबसे स्मितवदन से मिलने की प्रवृत्ति ने आपको संगीतसेवी तथा जन सामान्य में अतीव लोकप्रिय बना रखा है। सारंगी का माधुर्य स्वभाव में है या स्वभाव माधुर्य सारंगी में?

तीन लोकों से न्यारी काशी के रखवाले त्रिभुवनपति से विनय है कि बनारस की सारंगी की रक्षा करें। सारंगी शिरोमणि की रक्षा करें।

शनिवार 23 अक्टूबर, 1993

विनयावनत

शिव काली मन्दिर संगीत समिति
डी.रे.का., वाराणसी

पद्मश्री पं. बलवन्तरायजी भट्ट 'भावरंग'

के कर कमलों में

हे ज्ञान मेघ प्रवर्तक !

युग के संगीत दृष्टा, संगीत मार्तण्ड पं. ओंकारनाथजी ठाकुर के पास अनेकानेक शिष्य अंजलि, लुटिया या गागर लेकर पहुँचे तब मेघ के रूप में ही गुरु के ज्ञानोदधिको आत्मसात् करनेवाले तथा पुनः कृपापूर्वक विद्या प्रसाद को सभी शिष्य-शिष्याओं पर समानभाव से बरसानेवाले आप सच्चे संगीत सेवी हैं।

हे गायन-वादनाधिकारी !

“तस्माद्योगाय युज्यस्य योगः कर्मसु कौशलम्॥” आपने जो भी किया पूरी निष्ठा और समग्र अवधान से किया। छात्र के रूप में कर्मठ, गायक के रूप में सभाजयी, वादक के रूप में विलक्षण, गुरु के रूप में गौरवान्वित, ‘वाग्गेयकार’ के रूप में अनन्य तथा मानव के रूप में ‘महामानव’ आप धन्य हैं।

हे आचार्यों के आचार्य !

यह क्रम प्राप्त, स्वाभाविक और अवश्यभावी है कि, आप के शिष्य-प्रशिष्य, आपकी शिष्या-प्रशिष्या आज सफल, कर्मठ तथा सद्भावी आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हों। आपके द्वार ज्ञानवारि संचित तथा स्नेह-संस्कारित पौधे सजल वृक्ष बनकर संगीत जगत को फल अर्पण करने की स्थिति में हैं।

हे ‘लहरियों’ के निर्माता !

‘भावरंग-लहरी’ भाग एक-दो तथा तीन में; अनेक रागों में, विविध तालों में ध्रुवपद, धमार, सादरा, ख्याल, तराना, तिरवट, चतरंग, लक्षणगीत, रागमालाकदि विभिन्न शैलियों में एक से बढ़कर एक प्रगल्भ, रससिद्ध तथा नितनवोन्मेषशाली 451 रचनाओं को आपने गुणानुरागियों के समक्ष रखा है। अभी सैकड़ों रचनाएँ प्रकाशनाधीन हैं।

हे सौम्य-प्रकृति, सहज-सद्भावी !

आपके सहज-सरल स्वभाव के कारण ‘सर्वमित्र’ और ‘अजातशत्रु’ जैसे विशेषण आपको पा कर सार्थक बने हैं। समय-पालन, अनुशासन, छात्रहित चिन्ता एवम् भजनानुराग जैसे गुणों के कारण आप सदा-सर्वदा भारतीय संगीत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से सुशोभित नामों की श्रृंखला में स्थान पाये हैं।

संगीत के आदि आचार्य, विश्वेश्वर काशी विश्वनाथ से करबद्ध निवेदन है कि ‘भावरंग’ जी को भक्ति और शक्ति दे कर अनन्य ‘लहरियों’ का निर्माण करायें।

विनयावनत

शनिवार 23 अक्टूबर, 1993

शिव काली मन्दिर संगीत समिति
डी.रे.का., वाराणसी

‘अभिनन्दन समारोह 1993’ की अविस्मरणीय स्मृतियाँ



पं. हनुमान प्रसाद मिश्र को अभिनन्दनपत्र एवं अंग वस्त्रम् प्रदान करते हुए समारोह के अध्यक्ष एवं मुख्य कार्मिक अधिकारी श्री राजेन्द्र कुमार जैन



पं. बलवन्त राय भट्ट ‘भावरंग’ को अभिनन्दनपत्र एवं अंगवस्त्रम् प्रदान करते हुए समारोह के अध्यक्ष एवं मुख्य कार्मिक अधिकारी श्री राजेन्द्र कुमार जैन

‘नादार्चन - प्रवेशाङ्क’ प्रासंगिकी : शुभकामनाएँ - अभिव्यक्ति - उद्गार

(सम्पादक को सम्बोधित)

यह बड़े हर्ष का विषय है कि शारदीय नवरात्र के पवित्र पावन पर्व पर आपने संगीत की भव्य स्मारिका ‘नादार्चन’ के प्रकाशन का संकल्प लिया है। मुझे विश्वास है कि जिस उद्देश्य एवं आदर्श को ध्यान में रखकर इस संगीत - पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है, वह सार्थक होगा।

— डॉ० विद्या निवास मिश्र,
वाराणसी।

भारतीय संगीत के प्रयोग - पक्ष के साथ - साथ उसके चिन्तन - पक्ष का भी अनुशीलन आवश्यक है। तभी पूर्णांग अनुशीलन संभव है। इस परिप्रेक्ष्य में शिवकाली मन्दिर संगीत समिति का यह प्रयास सराहनीय है।

— डॉ० प्रेमलता शर्मा,
वाराणसी।

प्राचीन काल से ही काशी नगरी संगीत एवं संस्कृति का केन्द्र रही है। यह नगरी आज भी उच्चकोटि के संगीतज्ञों, कलाकारों एवं शास्त्रज्ञों से सुशोभित है। संगीत के क्षेत्र में परिपूर्णता हेतु काशी में एक संगीतमय प्रकाशन की आवश्यकता थी। काशी की संगीत - परम्परा को और सुदृढ़ बनाने में ‘नादार्चन’ का प्रयास अति सफल रहे, ऐसी मेरी शुभ कामना है।

— डॉ० एन० राजम्,
वाराणसी।

श्री शिव काली मन्दिर संगीत समिति द्वारा आयोजित संगीत - सम्मेलन तथा उसके द्वारा प्रकाशित संगीत - पत्रिका ‘नादार्चन’ की सफलता के लिए मैं कामना करता हूँ। मुझे विश्वास है कि नयी पीढ़ी के लिए यह प्रयास सांस्कृतिक एवं रचनात्मक गतिविधियों का एक बहुमूल्य स्रोत बनेगा।

— श्री रोमेश चन्द्र सेठी,
वाराणसी।

‘नादार्चन’ संगीत वार्षिकी का प्रवेशाङ्क प्राप्त हुआ। पत्रिका का गेट - अप, छपाई आदि सभी उत्कृष्ट एवं नयनाभिराम है। सामग्री भी उपयोगी है। आशा है संगीत जगत् के लिए यह पत्रिका काफी लाभदायक सिद्ध होगी।

— संपादक ‘संगीत’ मासिक
हाथरस।



‘नादार्चन’ के अन्तर्गत विविध कोटि के निबन्धों को पढ़कर ऐसा अनुभव हुआ कि संगीत, संस्कृत एवं दर्शन के क्षेत्र में काशी नगरी आज भी अग्रणी है।

—डॉ० ए० वी० दोषी,
राजकोट।

पत्रिका के सभी लेख विद्वत्तापूर्ण तथा संगीत-जगत् के लिए उपयोगी हैं। वर्तमान युग में ऐसी पत्रिका की नितान्त आवश्यकता थी।

—डॉ० जयचन्द्र शर्मा,
बीकानेर।

पत्रिका आकर्षक लगी। कुछ ऐसे लेख हैं जो बिल्कुल नयी और रोचक बात कह रहे हैं। आशा है ‘नादार्चन’ के माध्यम से संगीत के ऐसे और भी नवोन्मेष आप प्रकाशित करते रहेंगे।

—डॉ० मुकुन्द लाठ,
जयपुर।

पत्रिका सांगोपाङ्ग देखी, सम्पादकीय सहित सभी लेख। सात्विकता की सुगन्ध, आध्यात्मिकता का आनन्द - आलोक। नादार्चन संगीत वार्षिकी के माध्यम से संगीत-सेवा का आपका यह प्रयास सफल रहे, यही कामना है।

—प्रो० रवीन्द्रनाथ ओझा,
बेतिया।

नादार्चन का प्रवेशाङ्क अतीव आकर्षक लगा। पत्रिका का गेट-अप सुरुचिपूर्ण है। निबन्धों का चयन आदि भी संतोषजनक है। पत्रिका के उत्तरोत्तर उत्कर्ष की कामना करती हूँ।

—श्रीमती उषा के० त्रिवेदी,
अहमदाबाद।

पत्रिका बहुत सुन्दर है, लेखों का चयन भी बहुत सूझ-बूझ के साथ किया गया है। आपका संपादन-दायित्व-निर्वाह अनुकरणीय है।

—श्री ओम प्रकाश चौरसिया,
भोपाल।

नादार्चन के प्रथम अङ्क की प्रस्तुति एक सफल-सात्विक-सांगीतिक प्रयास रहा; स्तरीय और श्लाघनीय भी। उसके भावी अंक भी उदात्त-उन्नत होंगे, ऐसी आशा है।

—श्री शिवसेबक त्रिपाठी
वाराणसी।

With Best Compliments From :

DLW Cinema Club

Members are requested to
please keep the hall and
Surrounding clean and tidy

From

DLW Cinema Club

With Best Compliments From :

Airarc Co

AIRARC WELDING HOLDER

- ◇ For heavy duty manual arc welding. ◇ For current rating upto 400 Amps & 600 Amps.
- ◇ Suitable for electrode dia upto 8 m.m. ◇ Open mouth jaw type ◇ 100% fully insulated
- ◇ Light weight and easy to handle. ◇ Approved by DLW, Varanasi & Bharat Heavy Electricals Ltd., Heavy Engg. Corpn., Ranchi.

AIRARC GOUGING TORCH with 360° FREE Swivel Cable

AIRARC GOUGING TORCHES are available in two types.

1. Standard Duty with 2 mtrs. long cable (for 6 mm to 9 mm gouging carbon electrodes).
2. Heavy Duty with 2 mtrs. long cable (for 12 mm - 15 mm gouging carbon electrodes).

TECHNICAL FEATURES :

- For High Conductivity of Current, Electrolytic Copper is used fully.
- Jaws, Handle, Lever are fully Heat resistant Insulators for longer life of the Torch.
- The Co-axial cable is 2 mtrs. long for better Aircooling and Current Consumption.
- Air Connection nozzle is used for better current connection and Air flow from the compressed Air.

360° free revolving movement the AIRARC TORCH without Twisting the Cable.

27, S. R. DAS ROAD, CALCUTTA

TELEX : 021-4304 CAR IN CODE : RTLX-270
CABLE : ARCWELD TEL. NO.: 76-6608